नारी धर्म्म ग्रन्थमाला संख्या ४



अंजना देवी

लेखकः—

विद्यारत्न, हिन्दी-प्रभाकर

पं० रामस्वरूप शर्म्मा

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स

लोहारी गेट लाहौर

तृतीय वार १००० | सं० १९८५ | मूल्य ॥)

प्रकाशक—
नारायणदत्त सहगल
अध्यक्ष
आर्य पुस्तकालय
लोहारी गेट, लाहौर।



मुद्रक—
लालजी दास
ऐंग्लो ओरएण्टल प्रेस
चैम्बर लैन रोड
लाहौर।

भूमिका ।

धन्यास्ते कवयः काव्यपरमार्थविशारदाः ।
विचारयन्ति ये दोषान्गुणांश्च गतमत्सराः ॥१॥

तिलक-मञ्जरी ।



ड़ी ही आनन्दका विषय है कि अब पंजाब में भी राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचार दिनों दिन होता जा रहा है । इसका श्रेय पूर्ण रूपेण डी० ए० वी० स्कूल और कालेज को ही है । यहांपर हिन्दीकी पुस्तकें भी इन दिनों कुछ प्रकाशित हुई हैं, किन्तु मुझे यह कहनेमें कुछ भी सङ्कोच नहीं होता कि उन सबमें भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियोंके अतिरिक्त चरित्र-चित्रण बड़ी ही बुरी तरहसे किया गया है । उन बेचारे लेखकोंका भी दोष क्या । वे उर्दूके लेखक हैं और संस्कृत साहित्यसे अपरिचित भी । परन्तु यह अनधिकार चेष्टा अवश्य है ।

उदाहरणार्थ 'शाही लकड़हारा' ही ले लीजिए । यद्यपि स्पष्टतया लेखकने इसे कहानी स्वीकार किया है, तथापि टाइटल पेज पर लिखा गया है उपन्यास । इसमें चरित्र-चित्रण करना बिल्कुल नहीं आया है । एक ओर तो "शाही लकड़हारे" को इतना सरल प्रकृति लिखा गया है

कि वह "चन्दन" को साधारण लकड़ी समझकर उसी भावमें (साधारण लकड़ीके भावमें) बेच आता है, और दूसरी ओर उसके मुखसे बड़ी सरस एवं लच्छेदार आ-लङ्कारिक कविताएं कहलवाई गई हैं। पुस्तककी भूमिकामें ही बीसियों भाषा-सम्बन्धिनी अशुद्धियां रहते हुए भी लिखा गया है, 'इस पुस्तकको किसी समालोचककी अपेक्षा नहीं' क्या खूब !

विद्वान् "हनुमानजी" के सुयोग्य लेखक भी इन त्रुटियोंका लक्ष्य बने हैं, उदाहरणार्थ विवाह कालीन वस्त्रों को केशरिया वस्त्र लिखना, क्योंकि आधुनिक युगमें केश-रिया वस्त्र राजपूत मृत्युसमय हीके युद्धमें पहिनते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है। पवनका चिता बनाकर जलनेपर प्रस्तुत होना भी ठीक नहीं, प्रसिद्ध है कि पतिवियोगमें स्त्रियां ही ऐसा करती आई हैं न कि पत्नी-वियोगमें पति।

पुस्तकमें अंदर आदि ठेठ भाषा शब्दोंको अनुस्वारसे ही लिखना व्याकरणानुकूल समझा है, किन्तु संस्कृतके शब्द नकार मिश्रित ही लिखे गये हैं यथा (मन्दिर सौन्दर्य) आदि। कई संस्कृतके शब्द जिनका प्रयोग हिन्दीके प्रकाण्ड विद्वान् भी अशुद्ध करते हैं, उनको यथार्थ-रूपमें लिखा गया है; यथा 'समानता' के स्थानपर 'समता' और 'उपरोक्त' तथा 'लालिमा'के स्थानपर 'उपर्य्युक्त' और

'रक्तिमा' आदि। लिये-लिए, चाहिये-चाहिए, इन शब्दोंमें अभी मतभेद है इस लिए दोनों तरहसे लिखे गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक स्वतन्त्र शैलीसे लिखी गई है, जैन रामायणका केवल कथानक मात्र लिखा गया है। पुस्तकमें स्वतन्त्र कल्पनासे भी काम लिया गया है, ऐसा करना सामयिक दृष्टिसे उचित समझा गया है। यद्यपि ऐसा करना उपन्यासमें ही उचित होता है, तथापि प्रस्तुत पुस्तकमें सामयिकताको अधिक प्रधान लक्ष्य रक्खा गया है।

इस पुस्तिकके लिखनेका यह मैंने प्रथम ही प्रयास किया है, आशा है कि यू० पी० के समालोचक विद्वान् इसमें (एक तरुण पंजाबीकी लिखी होने पर भी) पंजाबी-पनकी बू न पायेंगे। यदि समालोचक महोदयोंने मेरा कुछ भी साहस बढाया तो और भी कुछ लिखनेका प्रयत्न करूंगा। आशा है समालोचक महानुभाव अपनी सत्यानुगामिताका परिचय देंगे।

निवेदक—

रामस्वरूप शर्म्मा।

द्वितीय संस्करणकी भूमिका !

मुझे इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण छपते देखकर परम प्रसन्नता होती है। अबकी बार सदाके लिए मैं इस का सर्वाधिकार श्री नारायण दत्त सहगल अध्यक्ष "आर्य पुस्तकालय" लोहारी गेटको देता हूं।

अन्तमें "प्रताप" "अभ्युदय" "आज" "सरस्वती" "ज्योति" आदिके सम्पादकोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिन्होंने कि इस पुस्तक पर अपनी शुभ सम्मति प्रदान की है।

विनीत—
लेखक,

ओ३म्

अंजना देवी

प्रथम परिच्छेद ।

कथा-मुख ।



दो पहरका समय है, सूर्य्य-देव अपनी प्रखर किरणोंसे कमलचनको उल्लासित और कुमुदिनीको संतप्त कर रहे हैं, वह भी बेचारी अपने प्राणेश्वर कुमुदिनीनाथको स्मरण कर अपना समय व्यतीत करती हुई, समस्त कष्टोंको यथाकथञ्चित् सहन कर रही है । उलूक अपनी बेढंगी आकृति छिपाये सूर्य्यको पानी पी पीकर कोस रहा है । पक्षिगण निस्तब्ध हैं, गोपाल अपने पशुओं समेत वृक्षोंके नीचे विश्राम ले रहे हैं, किम्बहुना मध्यान्ह कालीन समय अपने पूर्ण विकासपर है ।

आओ पाठक-पाठिकाओ ! आज हम तुम्हें मनुष्यके यौवन-कालीन दृश्यकी एक झलक दिखाएं ।

एक सुशोभित सजे-सजाए कमरेके अन्दर बैठी हुई नवयुवतियां वार्तालाप कर रही हैं । इनका यह आलाप-प्रसङ्ग अत्यन्त हृदयहारी और सभ्यतोचित है, अथवा यों कहिये मानवजातिका मधुर साहित्य है और उच्चकोटिका आदर्श ।

प्रथम—प्यारी बहिन अञ्जना ! आज तो तुम कुछ उदासीनसी मालूम होती हो, इसका क्या कारण है ?

द्वितीय—हां, बहिन इन्दिरा ! तूने ठीक कहा । आज हमारी सखी अवश्य ही चिन्तित है, किन्तु यह ऐसी चिन्तितावस्थामें भी अत्यन्त ही मनोहारिणी प्रतीत होती है । इसकी नीली साढ़ी व्याकुलता-वश जब इसके मुख पर पड़ जाती है, तो इसका मुख ऐसा प्रतीत होता है, मानों यमुनामें चन्द्रमा । यदि मैं कवयित्री होती, तो न जाने कैसा कुछ इसके रूप-वर्णनमें परिश्रम करती ।

प्रथम—बहिन लक्ष्मी ! तूने जो कुछ कहा है सो ठीक है । और हां री ! देख तो सही, हमारी सखी अब निरी बालिका नहीं है, पूर्ण-यौवना है । १६ वर्ष की अवस्था कुछ कम नहीं, किन्तु हमारे महाराज महीन्द्ररायके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती । कहीं ऐसा भी होता है ।

द्वितीय—नहीं बहिन इन्दिरा ! तू नहीं समझी, महाराजके विषयमें तेरे इस विचारसे मैं सहमत नहीं, क्योंकि उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता है, किन्तु हमारी सखी भी तो कोई साधारण रूपवती नहीं है जो उसके अनुरूप पति अनायास ही मिल जाए।

अञ्जना—क्यों री ! तुम दोनों बड़ी ही उद्दण्ड हो गई हो। आखिर तुम्हें आज हो क्या गया है, जो मुझे इस प्रकार तंग करनेपर उतारू हुई हो, मेरा चित्त विवाह करनेको नहीं चाहता। कौन व्यर्थ अपनी स्वतन्त्रता खोए। सखियो ! मैं सत्य कहती हूं कि माता-पितासे मैं क्षणभर भी पृथक् होना सहन नहीं कर सकती।

दोनों सखी—ठीक है बहिन ! विवाहसे पूर्व हम भी ऐसा ही सोचती थीं। बहिन ! सच तो यह है कि वहां जैसा स्वर्गीय सुख मिलना अत्यन्त कठिन है। वहां प्रेम-देवकी रङ्गभूमि है। मधुरिमाका आदर्श और प्रेमकी पूर्णिमा है। वह सुख पितृ-गृहमें कदापि सुलभ नहीं, यद्यपि पिताका प्रेम और माताकी लहलहाती स्नेहलता एक अनुपम आनन्दमय जीवन है, तथापि यह अपनी जगह और वह अपनी। कोई मनुष्य दधिको और कोई किसमिसको अथच कोई खांड और मधुको मीठा बताते हैं; वस्तुतः मीठा वही है जिसके मनको जहां शान्तिकी

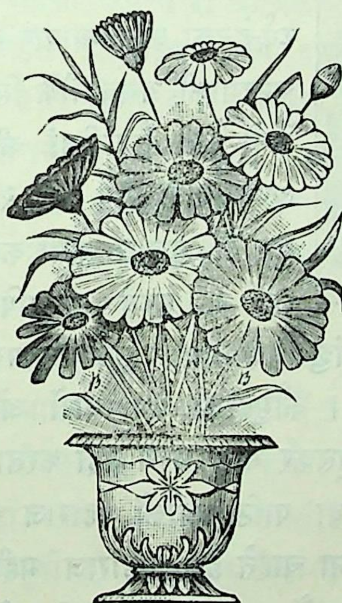
छटा दीखती है । अहा ! क्या ही अपूर्व सुख है !

अञ्जना—(आप ही आप) मन्त्रिपुत्री इन्दिराकी अवस्था मेरे ही बराबर है, पुरोहितकी लड़की भी मेरी अन्तरङ्ग सखी हैं और समवयस्का भी । विवाहसे पूर्व सदा एक साथ खेलती रही हैं । इन दोनोंको विवाहसे पूर्व कुछ बातें न बनानी आती थीं, अब तो......नहीं नहीं, कोई मिथ्या नहीं कह रहीं, वस्तुतः पति-प्रेम कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं है । (प्रगट) हां बहिन ! सचमुच कहती हूं, पिता और मातासे अलग होकर मुझसे कहीं न रहा जायगा, तुम निगोड़ी कैसी हो ! मातृ-प्रेमको एकदम तिलाच्जलि !! हा ! क्या यही तुम्हें शास्त्र-शिक्षा दीगई है !

दोनों सखी—बहिन ! तुमने तो बड़ी लम्बी-चौड़ी वक्तृता झाड़ दी । हां री ! हमने सुना है तुम्हारे विवाहके लिये विद्द्यपर्व और पवन चुने गये हैं । तो अब जल्दी करो, लाओ मिठाई । कैसा शुभ समाचार है !

अञ्जना—सखियो ! आज तुम्हें क्या हो गया है ? मुझे क्यों व्यर्थ तंग कर रही हो ? आखिर आज तुम्हें सूझी क्या ? क्यों री इन्दिरा ! तू न मानेगी ? चल तेरी मांसे आज तेरी कैसी पूजा कराऊं । क्यों लक्ष्मी ! तू ऐसी बातें करना पहिले पसंद न करती थी, किन्तु तुझे भी क्या हो गया ? पाठक-पाठिकाओंको अब यह तो भली भांति ज्ञात

हो ही गया होगा कि इन तीन नवयुवतियोंमें एक महाराज महीन्द्ररायकी सुपुत्री अञ्जना और दूसरी मन्त्री बुद्धिसागरकी एक मात्र कन्या इन्दिरा, अथच तीसरी पुरोहित ईशानदेवकी कन्या लक्ष्मी है । उल्लिखित वार्तालापसे तत्कालीन आर्य्य-बालाओंके हार्दिक भावोंका अच्छा पता चलता है ।



द्वितीय परिच्छेद ।

वरकी खोज ।

जायते सह कन्याभिः शोकशंकु कुटुम्बिनाम् ।
भज्यते च स्वयं तेषां लब्धे सुसदृशे वरे ॥

(मालिकामारुतम्)



र्य्य-देवका कार्य-व्यापार समाप्त हुआ, चन्द्रमाकी अगवानीके लिये प्रकृतिने कैसी कैसी तैयारियां की हैं, उनकी अभ्यर्थनाके लिये क्या २ साज सजाए हुए हैं, मुखपर कैसी कान्ति विराज रही है। सूर्य्य सन्तापित श्रमजीवी और कृषक सुधांशु निशानाथकी सुकोमल प्रकृतिकी सराहना कर रहे हैं। कौमुदीकी प्रभा चारों ओर फैली है। सूर्य्यको कोई भूलकर भी स्मरण नहीं करता। अब हम अपने पाठक तथा पाठिकाओंको महाराज महीन्द्ररायके भवनमें ले जाना चाहते हैं। महाराज महीन्द्रराय एक पलंगपर लेटे हुए हैं, पास ही महारानी श्रीविश्वमोहिनी

बैठी हैं, आपसमें कुछ बातें करते प्रतीत होते हैं। इनकी आकृतिसे मालूम होता है किसी बड़े गम्भीरतर विषयपर विचार हो रहा है, आओ हम भी सुनें।

राजा—प्रिये! तुम तो व्यर्थ मुझे ही दोष देती हो, क्या मैं ऐसा मूर्ख हूं कि चुप बैठे हुए हूं। नहीं कदापि नहीं, बात वास्तवमें यह है कि ऐसे कार्य्योंमें शीघ्रता करनी अच्छी नहीं। हिन्दू धर्मग्रन्थोंमें क्या तुम्हें ज्ञात नहीं विवाह कैसा धार्मिक कार्य्य बताया है? प्राचीन ऋषियोंने विवाहको अत्यन्त ही धार्मिक कार्य्य बतलाया है।

रानी—नहीं, प्राणनाथ! क्षमा कीजिये। स्त्रियोंका हृदय प्रायः तरल होता है। इसीलिये प्रत्येक कार्य्यमें हठात् उनकी तरलता टपक पड़ती है। हां नाथ! हमारे कुल-गुरु श्री ईशानदेवजीने उस दिन कथा करते हुए कहा था कि हिन्दुओंका प्रत्येक कार्य्य निर्मर्य्याद कभी नहीं होता। मर्य्यादा-हीन कार्य्य वही है जिसमें धर्म साथ न हो, अर्थात् अर्थ, काम इन दोनों पुरुषार्थोंके साथ भी धर्मको परमावश्यक माना गया है। सम्भवतः इसी लिये विवाह भी एक धार्मिक कार्य्य है।

राजा—हां, प्रिये! तुम खूब समझी। तुम बड़ी बुद्धि-मती और विदुषी हो। तुम्हारे पिता पूर्ण विद्वान् थे, अतएव तुम्हारे पढ़ानेमें बड़े यत्नवान् रहे, यह उनके ही

परिश्रमका फल है कि तुम शास्त्रों पर इतनी अधिक श्रद्धा रखती हो।

रानी—महाराज! आप क्यों इस दासीकी इतनी प्रसंशा करते हैं। मैं कुछ भी नहीं जानती। हां, आप जो कुछ आदेश करते हैं उसका पालन करना मैं अपना कर्तव्य अवश्य समझती हूं।

राजा—हां, प्रिये! बात बीचही में रह गई, मैं यह कह रहा था कि प्रत्येक विषयमें पुरुषको स्त्रीकी सम्मति लेनी चाहिये। मैं स्त्रियोंको केवल भोग्य सामग्री ही नहीं समझता हूं, प्रत्युत उनकी विश्वतोन्मुखी उन्मेषशालिनी बुद्धिकी उपयुक्तता स्वीकार करता हूं।

रानी—प्राणेश्वर! आप जैसे विद्वान् पतिको पाकर मैं अत्यन्त धन्य हूं, स्त्री-जातिके प्रति आपके ये भाव नितान्त प्रशंसनीय है। साथ ही मैं भी स्त्रियोंके एकदम स्वातंत्र्यकी बिरोधिनी हूं। वास्तवमें स्त्री-पुरुष एक दूसरेके अन्योन्याश्रय हैं। हां, नाथ! आप क्या कहनेको थे? कहिये।

राजा—प्रियतमे! योग्य वरकी खोजके लिये मैंने कई अपने दूतों को भेजा है, देखो क्या खबर लाते हैं। वर रूप, गुण, कुल, सम्पत्ति और प्रभुतामें समान होना ही श्रेष्ठ है। शास्त्रोंमें लिखा है:—

ययोरेव समं चित्तं ययोवरे समं कुलम्।
तयोर्मैत्रि विवाहश्च नतु पुष्ट विपुष्टयोः॥

रानी—नाथ! पद्यके भावको तनिक और स्पष्ट कर दीजिये और साथ ही इसकी विशेष परिभाषा भी कह दीजिये।

राजा—इस श्लोकका अनुवाद यह है:—

जिनका धन अरु मान कुल, हैं सब एक समान।
तिनकी मिताई ब्याह बहु, भाषत योग्य सुजान॥

अर्थात् जो मान, धन, कुलमें एक ही समान हैं, उन्हीं के बीच विवाह और मित्रता हो सकती है, दूसरोंके नहीं। यद्यपि संसारमें सर्वत्र समताका भाव फैलाना कल्याणकारक है, तथापि इस विषयमें सतर्क रहना चाहिये।

रानी—नाथ! मेरा तो विचार यह है कि इस साम्य और वैषम्यवादने ही संसारमें अशान्ति प्रचारित की है, अर्थात् जब कभी अशान्तिकी अभिवृद्धि होती है, इसीसे होती है, अतः योग्य वरको देखकर ही कन्याको दे डालना चाहिये।

राजा—नहीं, प्राणेश्वरि! तुम भूलती हो, वास्तवमें बात यह है कि जबतक संसारमें मस्तिष्क और शारीरिक शक्तियोंमें भेद माना जाएगा, तबतक विषमता बराबर बनी रहेगी। सिद्धान्त यह है कि शारीरिक और बौद्ध

(बुद्धि-सम्बन्धी) परिश्रमका मूल्य कदापि एक नहीं हो सकता ।

ये बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें प्रधान मन्त्री बुद्धिसागर जी भी आ धमके । आपने आते ही यथोचित शिष्टाचारके अनन्तर दो चित्र महाराजके सन्मुख रक्खे । महाराजने चित्रोंका भलीभांति निरीक्षण-परीक्षण किया, विचारके अन्तमें सम्मति स्थिर हुई कि पवन ही इसके उपयुक्त पात्र हैं, मन्त्रीको आज्ञा दी कि आप महाराज प्रह्लादविद्याधरके यहां जाएं और उनसे इस विषयमें बातें करें । पवन जैसा सुयोग्य वर मिलने पर हम अपनेको अहोभाग्य मानेंगे । सुना है पवन विद्या और पराक्रम दोनोंमें अद्वितीय है ।

मन्त्री बुद्धिसागरजी महाराज महीन्द्ररायसे विदा हुए, और अपने घर आये । इतनेमें मन्त्रिपुत्री इन्दिरा आ गई। आते ही पितासे पूछा—"आज आप अत्यन्त प्रसन्नचित्त जान पड़ते हैं, महाराजके यहां इतनी रात्रितक क्या करते रहे ?" मन्त्रीने हंसकर कहा—"तुम्हारी सखीके निमित्त वर निश्चित करनेके लिये रत्नपुर जा रहा हूं । इन्दिरा अत्यन्त प्रसन्न हुई । अपने मनमें कहने लगी—"सखी सौभाग्यवती हो, मैं कल खूब छेड़-छाड़ करूंगी ।"

———

तृतीय परिच्छेद ।

विवाह का निश्चय ।

चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः ।

नैषध-चरितम् ।



षा अपनी पीताम्बर साड़ी पहिने आ पहुंची है, कमल-वन सत्कवि की प्रतिभा की भांति खिल गए हैं, उन पर भौरों का झुंड मण्ढलाकार होकर धावा बोल रहा है । महारानी उषा की ओर से पवन पहरुए का काम दे रही है, कमलों की मधुपों से अपने हलके थपेड़ों द्वारा रक्षा करना चाहती है, किन्तु ये लोलप क्यों मानने लगे । पवन की प्रति-द्वन्द्वितापर तुले हुए हैं, उषा ईषत् अरुण नेत्रों से भौरों की ओर घूर रही है । यह बात है कि प्रातः कालीन दृश्य अत्यन्त मनोहर और नैयनाभिराम हैं । ऐसे समथ में हम एक बृद्ध को अत्यन्त वेग के साथ घोड़ा दौड़ाते, रत्न-पुरकी ओर अग्रसर होते देख रहे हैं, आपका शरीर

सुडोल और मुखाकृति एक प्रतिभाशाली पुरुष होने की सूचना दे रही है। ये हमारे पूर्व-परिचित महाराज महीन्द्रपुराधीश के प्रधान मन्त्री श्रीबुद्धिसागर जी हैं।

आप कुछ चिन्तित से दिखलाई पड़ते हैं, चिन्ता का कारण है महीन्द्रपुर से निकलते हुए अपशकुनों का होना। आप प्राचीन प्रकृति के मनुष्य हैं और इस प्रकार की बातों पर आपका अटल विश्वास है।

देखते ही देखते मन्त्री महोदय रत्नपुर की सीमा में पहुंच गये, वहां कृषकों के लाभ के लिये अनेक नूतन यन्त्र बने हुये थे, जिन से बीसियों दिनों का काम घंटों में हो जाता था। प्रत्येक मनुष्य के चेहरे पर प्रसन्नता दिखलाई देती थी। मार्ग अति परिष्कृत थे और मनोरम भी। यह तो नगर के बाहर की दशा थी, अब नगर में चलिये। यह नगर वास्तव में अपने नाम को सार्थक करता था। सुन्दर बाजार, रत्नों की दुकानें, राजकीय सुप्रबन्ध, ये सब बातें सोने में सुगन्ध थीं। प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य्य थी। कई बड़े २ विद्यालय थे, कपड़े का व्यापार अच्छा होता था। एक एक शिल्पकारी देखकर चित्त इसी एक बात को चाहता था कि बनाने वाले के हाथ चूम ले। इस नगर की सुषमा को निहारकर गोस्वामी तुलसीदास के ये शब्द सहसा स्मरण

हो आते थेः—

वरणि न जाई नगर विभूती।
जनु विरंचि इतनी करतूती ॥

स्थान २ पर अतिथिशालाएं (सराय) सुसज्जित थीं । यह सब कुछ होने पर नागरिकों का जीवन अत्यन्त विलासमय न था । मन्त्री जी ये सब दृश्य देखते ही महाराज रत्नपुराधीश्वर की शतमुख से भूरि २ प्रशंसा करते हुए राजभवनों के समीप पहुंचे । द्वारपाल को कहा कि महाराज को मेरे आने की सूचना दो । द्वारपाल ने महाराज को सूचना दे दी, मन्त्री महोदय अन्दर लेजाए गए । महाराज ने रत्न-खचित आसन पर बैठने की आज्ञा दी । मन्त्री ने धन्यवाद पूर्वक आसन ग्रहण किया अनन्तर इस प्रकार से बात चीत होने लगीः–

राजा—मन्त्रिवर्य्य ! सुनाइये तो सही, आपके महाराज तो अच्छे हैं ? प्रजा के अन्दर महाराज के प्रति सुसन्तुष्टि तो होगी ही; क्योंकि तुम्हारे महाराज अद्वितीय विद्वान् हैं, मैं उनके स्वभाव को अच्छी तरह से जानता हूं । मैं गुरु-गृह में अध्ययन करते समय उनके साथ रहने के आनन्द को वर्षों तक लूट चुका हूं । आहा ! वे भी क्या ही अच्छे दिन थे । तुम्हारे महाराज की प्रकृति प्रशान्त महासागर की भांति गम्भीर एवम् वात्सल्यपूर्ण

है । हांजी, एक बार अध्ययन-काल में ही हम दोनों ने सम्बन्धी होने की प्रतिज्ञा की थी । बात यह थी, एक दिन हम दोनों बैठे थे कि तुम्हारे महाराज ने कहा कि "मित्र ! हमारी मित्रता चिरस्थायिनी हो, एतदर्थ मैं आपसे यह प्रतिज्ञा कराना चाहता हूं कि, यदि आपके घर पुत्री और मेरे घर पुत्र अथवा मेरे घर पुत्री और आप के घर पुत्र होंगे, तो हम उनका विवाह कर देंगे"। सो ईश्वर की कृपा से हमारे पवन नवयुवक हैं, और सुना है, राजकुमारी अञ्जना भी विवाह के योग्य है, किन्तु ज्ञात होता है, महाराज महीन्द्रराय सम्भवतः अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये यदि हो सके तो आप उन्हें स्मरण करा दीजियेगा ।

मन्त्री—पृथिवीपते ! आपने जो कुछ कहा सब ठीक है, किन्तु महाराजके प्रतिज्ञा विस्मरण (भूलने) की बात ठीक नहीं । महाराजने विवाह निश्चित करनेहीके लिए तो मुझे भेजा है । उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक अध्ययन-कालीन बातें स्मरण कराने हीके लिये तो बार २ मुझे आते समय कहा था, किन्तु राजन् ! आपकी भी स्मरण-शक्ति विलक्षण है, अभीतक वे सब बातें आप भूले नहीं, तदर्थ धन्यवाद ।

उपर्युक्त बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें पवन भी आ गये । इनका शरीर सुदृढ़ था । लम्बी बाहु, आयत वक्ष-

स्थल, पीवर स्कन्ध और उन्नत ललाट, तथा सुस्निग्ध वेश शोभायमान थे। यद्यपि शरीरोन्नतिमें निज पिताको जीत लिया था, तथापि नम्रतासे वे छोटे ही दीख पड़ते थे। मुखपर ब्रह्मचर्य्य-जनित तेजकी अपूर्व झलक थी। पवनने पिताजी और मन्त्रीको प्रणाम किया, और आज्ञा पाकर बैठ गये। अब बातें इस प्रकारसे होने लगीं।

राजा—पुत्र! तुम इनको तो जानते ही होगे, ये महाराज महीन्द्रपुरके प्रधान मन्त्री हैं, तुम्हारे साथ अञ्जना कुमारीका सम्बन्ध करनेके लिए यहां आये हैं। सुनाओ, तुम्हारी क्या इच्छा है? इतनेहीमें मन्त्रीने एक तस्वीर कुमारके सम्मुख रक्खी, कुमारने ईषत् नेत्रोंको नीचा करके उस चित्रको देखा, किन्तु उसी क्षण सिर नीचा कर लिया। पवनके मुखपर लज्जाके कारण रक्तिमा (ललाई) दीख पड़ती थी, "मौनं सम्मतिलक्षणम्" के अनुसार कुमारके इस मौनहीको सम्मति समझा गया और सम्बन्ध स्थिर हो गया। नगरमें इस शुभ सम्वादके फैलते ही आनन्द मनाया जाने लगा; कवियोंने महाराजको अपनी कविता सुनाकर और गायकोंने गान-विद्यामें अपने चातुर्य्यका प्राचुर्य्य (कुशलता) दिखाकर पारितोषिक पाये। प्रजाका सुप्रबन्ध होनेके कारण प्रजाभरमें कोई याचक ही न था जिसको दान दिया जाता। इस प्रकारसे यह शुभ

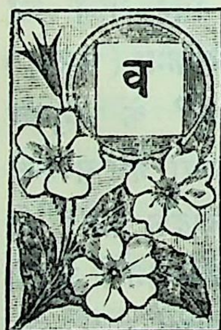
कार्य्य सम्पन्न हुआ । मन्त्री बुद्धिसागरने विनयावनत ही राजासे आज्ञा मांगी । उनको सम्मानपूर्वक विदा किया गया ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

अविचारहीसे दुःख होता है ।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदां पदम्

(किरातार्जुनीयम्)



वसन्तका समय है, सुहावनी मन्द २ पवन चल रही है । सुधांशुकी किरणें रमणीय राज-भवनके पृष्ठ-स्थित उद्यान पर गिर रही है, धवल ज्योत्सना अपने पूर्ण-विकासपर है, लताएं सघन और पार्श्वस्थित वृक्षोंपर लिपटी हुई हैं, पवन एक शिला पर बैठे म्लान-मुख कुछ सोच रहे हैं । इतनेही में मन्त्रिपुत्र बाल-सखा सत्यव्रत भी आ गये । हंसकर बोले—"मित्र ! वधाई ।" चौंककर राज-कुमारने देखा,

और कहा--"आओ भाई सत्यव्रत ! तुम तो आज कितने ही दिनोंमें आये हो।" "हां, भाई ! नई प्रेयसीके अनुरागके कारण वहांपर कैद रहते हो, फिर मुझ ग़रीबकी क्यों सुनाई हो।"

सत्यव्रत–नहीं मित्र, यह बात नहीं। हां, आज तुम उदास क्यों हो ? आज तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये, क्योंकि त्रैलोक्यसुन्दरी अञ्जनासे तुम्हारा विवाह होगा। भाई ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, किन्तु इस प्रकारकी अकारण ही चिन्ता कैसी ?

पवन—मित्र ! वसन्त को लोग ऋतुराज कहते हैं, वस्तुतः है भी ऐसा ही। इस में सब लताएं कुसुमशालिनी होती हैं, किन्तु मित्र ! इसीमें मालती लता का विकास क्यों नहीं होता ?

सत्य०—मित्र ! मुझे यह आशा कदापि न थी, कि मेरे प्रश्न का उत्तर आप इन शब्दों में देंगे। मैं समझता था कि इस शुभ कार्य्य से आपकी हृत्कलिका खिल उठेगी। इस सघन कादम्बिनी से आपका मनोमयूर नृत्य करने लगेगा, किन्तु बिना ही किसी कारण के यह दुर्भावना कैसी ?

पवन—मित्र ? न जाने मेरा चित्त कैसा कुछ हो रहा है। मेरे हृदय में न जाने क्यों विशेष प्रकार के विचार

स्थान पा रहे हैं । एक कवि ने लिखा हैः—

विमलं कलुषीभवच्छ चेतः,

कथयत्येव हितैषिणं रिपुंवा ॥

अर्थात् हृदय ही शुभ और अशुभ की सूचना दे देता है । मित्र ! जी चाहता है, कि विवाह से पूर्व एक बार मैं महीन्द्रपुर जाकर अञ्जना को प्रत्यक्ष रूप से देख आऊं, किन्तु पिताजी से भ्रमणार्थ जाने ही की आज्ञा मांगनी उचित होगी और तुम्हें मेरे साथ चलना होगा । सुनाओ तुम्हारी नवप्रणयिनी तो तुम्हें आज्ञा दे देंगी ?

सत्य०—कुमार ! आप चिन्ता न करें, मैं आपके साथ ही चलूंगा । आशा है ऐसा करने से आप के मनो-विकार नष्ट हो जाएंगे । अच्छा अब मैं घर को जाता हूं, आप महाराज से आज्ञा ले आइए ।

पवन पिताजीके समीप गये और कहा कि मैं कल भ्रमणार्थ सत्यव्रतके साथ जाऊंगा । आज्ञा दीजिये । महाराजने कहा—"पुत्र शीघ्र ही आना, क्योंकि अब राज-कार्य्य मुझसे नहीं होते । तुम्हारी सहायता बहुत पर्य्याप्त है ।"

इधर सत्यव्रत भी आ गये । अब दोनों मित्र महीन्द्र पुरको चल दिये । मार्गमें कई पर्वत पड़ते थे, उनके ऊपर चढ़कर नीचेके दृश्यको देखते २ न अघाते थे । पर्वतके

शिखरसे अधोगामिनी नदी या अधोदेशवर्तिनी हरित-वसना पृथ्वीका दर्शन सचमुच बड़ा ही आह्लादकारक व्यापार है।

सत्य०—मित्र! देखो तो सही, पर्वतश्रेणीपर फल-भार से झुके हुए वृक्ष क्याही मनोरम प्रतीत होते हैं और हां, पर्वतोंके देखनेसे हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि यद्यपि ये सदा जलसे परिपूर्ण हैं, तथापि वैसे ही कठोर हैं। दुर्जन चाहे कितना ही शास्त्रमें निमग्न रहे, किन्तु उस का स्वभाव कदापि नहीं बदल सकता।

पवन- हां, मित्र! देखो तो ऋषियोंके आश्रम कैसे भले मालूम होते हैं, ऋषि-बालक प्रसन्नचित्त अपने अध्ययनमें निरत हैं। हरिण शान्त तथा निर्भय चित्तसे बैठे हुए हैं, क्या ही हृदयहारी दृश्य है।

दोनों मित्र प्राकृतिक दृश्य देखते हुए, अपने २ हार्दिक भावोंको एक दूसरेसे कहते हुए जा रहे थे, कि इतनेमें महीन्द्रपुरकी सीमा भी आ गई। दोनों मित्रोंने देखा कि महाराज श्री महीन्द्ररायका सुप्रबन्ध बहुत ही अच्छा है, अतिथि शालाओंका तो कहना ही क्या, अनेक आवश्यक वस्तुएं प्रत्येक स्थानपर विद्यमान हैं, जिससे पथिकोंको अड़चन न हो। इस प्रकार राज्य-सीमाको देखते २ नगर को पहुंचे। दिनभर नगरके प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थान देखे।

सायंकालके समय राजभवनके समीप पहुंचे । वहां पर खड़े हुए उन्होंने राजकुमारीके भवनका पता लगा लिया और वे उसी तरफ चल दिये । वहांपर अभी गये ही थे कि कुछ नवयुवतियोंकी वार्तालाप सुनाई पड़ी, जो इस प्रकार थी ।

प्रथम—क्यों बहिन अञ्जना ! आज तो मिठाई खिलाओ देखो न तुम्हारा विवाह पवनके साथ होना सुनिश्चित हुआ है । बताओ तो सखी ! तुम्हें इससे प्रसन्नता तो अत्यन्त हुई होगी ।

द्वितीय—मेरी सम्मतिमें तो पवनकी अपेक्षा विद्युपर्व अधिक सुन्दर है, इस विषयमें मेरा तो यह विचार है कि यद्यपि पवन शूरवीर है, तथापि बहुतसे गुड़के ढेरकी तुलना मिश्रीकी एक डलीसे नहीं की जा सकती । इसके सुनते ही सब सखियां खिलखिला उठीं ।

पवन—मित्र सत्यव्रत ! क्या अब और कुछ सुनना शेष रह गया है । मैं इतना नीच समझा गया ! मैं भी यह प्रतिज्ञा करता हूं कि विवाहके बाद १२ वर्ष तक इस अभिमानिनी रूपगार्विंतासे वार्तालाप ही न करूंगा ।

सत्य०—मित्र ! तुम्हें इस प्रकारकी कठोर प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये थी, क्योंकि इस बातका प्रमाण क्या कि उक्त वाक्य अञ्जना हीके कहे हुए हैं ।

पवन—मित्र ! मुझे अब अधिक कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं, मैंने अच्छी तरह अपना सन्देह निवृत्त कर लिया है।

अब दोनों मित्र विषपण-वदन अपने नगरको लौटे। एक दूसरेसे विदा हुए। इस प्रकार इस नाटकका एक शोकान्त पर्दा गिर गया।

पंचम परिच्छेद।

:o:

विवाह।

अर्थो हि कन्या परकीय एव।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम्॥)



ज महीन्द्रपुर में बड़ा ही महोत्सव है, नगर की शोभा आज देखते ही बनती है, स्थान २ पर मनुष्यों के झुंड के झुंड एक हर्षोन्मत्त दशामें विह्वल से प्रतीत होते हैं। प्रत्येक बाजार फूलों से सजाया गया है। घर २ माङ्गलिक गीतों की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। आज राजकुमारी श्री अञ्जना देवी का शुभ विवाह है। बरात रत्नपुर से आनी

है, ओहो ! वह देखो कुछ धूल सी उड़ती नज़र आरही है, देखते ही देखते समस्त आकाश धूल से व्याप्त हो गया, भगवान् दिनमणि के दर्शन दुर्लभ हो गए । यह क्या ! हां, अब जाना, यह रत्नपुर के महाराज प्रह्लाद विद्याधर के राजकुमार श्री पवन जी की बरात आई है । क्यों न हो ! पवन एक पवन के समान वेगवाले घोड़े जोते हुए रथपर सुशोभित हैं, समीप ही एक मात्र बाल-सखा मन्त्रिपुत्र सत्यव्रत बैठे हुए हैं। सुन्दर २ रथोंपर ऋषि लोग भी अपनी शोभा बढ़ा रहे हैं । महाराज श्री महीन्द्रराय जी की ओर से मन्त्री बुद्धिसागर जी प्रबन्ध के कार्य्य में लगे हुए हैं। बरात की अगवानी की शुभ रीति पूरी हुई । बरात को भलीभांति जनवासे में ठहराया गया। सेवा के लिए भृत्यों का समुचित प्रबन्ध किया गया है । विवाह का शुभ मुहूर्त आ गया, शुभ लग्न में वरवधू वेदिका के पास लाये गए । प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बैठ जाने पर विवाह-संस्कार आरम्भ हुआ ।

दूसरी तरफ स्त्रियां वीणाविनिन्दित मधुर स्वर से मङ्गलगान गा रही हैं । अञ्जना की सखी इन्दिरा, लक्ष्मी, वसन्त-कुमारी आदि आज अत्यन्त प्रसन्न हैं । यद्यपि लक्ष्मी और इन्दिरा सखी के वियोग के कारण कछ उदास सी हैं, तथापि वसन्त-कुमारी अत्यन्त प्रसन्न है, क्योंकि

इसको अपनी प्यारी सखी के साथ उसके मनोरञ्जन के लिये जाना पड़ेगा। यह एक अनाथ बालिका है और महाराज के अन्तःपुर में ही पली है।

आहा! क्या ही मधुर गान हो रहा है, सङ्गीत भी संसार में अलौकिक विद्या है, आर्य्य इसके पूर्ण ज्ञाता थे। साम-गान में निरत सर्वदा ईश्वर के ध्यान में मग्न रहना अपना ध्येय समझते थे। आहा! सङ्गीत भी क्या अद्भुत शक्ति रखता है, प्रत्येक कठोरतर प्रकृति वाले मनुष्य का भी हृदय अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस प्रकार मङ्गलगान होते २ विवाह आरम्भ हुआ। पुरोहित श्री ईशानदेव जी आज प्रसन्नचित्त हैं। वे अपने जातीय सङ्गीत की उच्चतापर मुग्ध हैं। उनका विचार है, जिस जाति में सङ्गीत का आदर नहीं वह असभ्य और पशु समान है। किसी ने क्या ही ठीक कहा हैः—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

अर्थात् सङ्गीत (गान-विद्या) और साहित्य से जो हीन है, वह निस्सन्देह बिना सींग और पुच्छ का पशु है। हमारे महर्षियों ने सामवेद को जाना, यह हमारा जातीय गौरव है और ईश्वर प्राप्ति का साधन भी।

पुरो०—(वर को सम्बोधन करके) आज यह महाराज

महीन्द्रराय के हृदय का टुकड़ा तुम्हें सौंपा जाता है, इसके सम्मान का सदा ध्यान रखना तुम्हारा परम कर्तव्य है। जब यह अपनी सखियों में बैठी हुई हो, तो इसे कर्कश-स्वर (कठोर आवाज) से न बुलाना। प्रत्येक समय में सुखी करने की चेष्टा करना। कोई भी धार्मिक कार्य-कलाप इसकी सम्मति बिना करना व्यर्थ होगा। प्रत्येक कार्य्य में इसकी सम्मति लेना। इसे केवल अपनी तुच्छ दासी ही न समझना, किन्तु मन्त्री और मित्रका काम भी यह दे सकेगी।

पुरोहित ईशानदेव जी ने मन्त्रोच्चारण कर के वरके हाथ में कन्या का हाथ पकड़ा दिया। कन्या का हाथ सात्विक भाव के कारण पसीना २ हो रहा था। पवन अपने मन ही मन सोच रहा था (देखो स्त्रियां कैसी मायाविनी होती हैं, उस समय तो मुझे क्या कहती थी, किन्तु अब मुझे ही पतित्वेन स्वीकार रही है। ओफ्! निर्लज्जता की भी कोई सीमा होती है) पुरोहित जी ने पुनः कहा कि ये अग्निदेव और पंच विद्यमान हैं, इनकी विद्यमानता में वेदभगान् के आज्ञानुसार आज यह तुम्हारी धर्मपत्नी हुई।

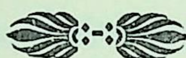
यह शिक्षा दे चुकने पर अञ्जना देवी को सम्बोधित करते हुए पुरोहित जी ने कहाः—

पुत्रि ! आज से तुम पवनजी की अर्द्धाङ्गिनी हुई। तुम्हारा कर्तव्य है कि बिना इनकी आज्ञा के कोई भी कार्य्य न करो। स्त्री का पति ही सब कुछ है। जिन स्त्रियों के हृदयों में पुरुष जाति के प्रति घृणा है वे कदापि सुखी नहीं रह सकतीं। उनका हृदय पुरुष जाति की ओर से निरन्तर प्रतिहिंसा की अग्नि से जला करता है। अशान्ति-देवी का साम्राज्य उन के हृदयाकाश में उदयोन्मुख प्रेम-रूपी चन्द्रकाराहु बन कर ग्रास कर लेता है, उस लहलहाती प्रेम लतिका को मदोन्मत्त हाथी की तरह तोड़ डालता है। इनका हृदय सर्वदा दुःखमय है। पुत्रि ! तुम अपने पति को ही गति समझना। आर्य्य-ललनाओं का इसी में श्रेय है। जिस घर में दाम्पत्य-प्रेम की सुरतरङ्गिणी बहती हो, वह साक्षात् स्वर्ग है। वहां विद्या, प्रभुता, लक्ष्मी और सर्वोपरि सुख विद्यमान हैं, शान्ति की अलौकिक ज्योत्स्ना की छटा उस घर में छिटकती है। पुत्रि ! पतिव्रता स्त्री मन्त्र-यन्त्रों से नहीं, किन्तु प्रेम से अपने पति को आधीन रखती है।

इस प्रकार विद्वद्वर श्रीईशानदेव जी ने वैदिक रीति से विवाह कराया। विवाह सानन्द पूर्ण हुआ। कई दिन इसी प्रकार आनन्द पूर्वक आमोद प्रमोद में व्यतीत हुए। एक दिन श्री महाराज प्रह्लाद विद्याधर का अधिक आग्रह

देख किञ्चित् खिन्न होकर महाराज महीन्द्रराय जी ने यथोचित सत्कार पूर्वक विदा किया । बरातियों को भी अत्यन्त उपहार देकर प्रसन्न किया, सभी भूरि २ वदान्यता की प्रशंसा करते हुए रत्नपुर की ओर रवाना हुए । महाराज महीन्द्रराय पुत्री के शोक से व्याकुल थे, अञ्जनादेवी की माता भी विरहकातरा अनमनी सी खड़ी रहीं ।

षष्ठ परिच्छेद



विवाह के अनन्तर की बातें ।

पतिव्रतामयं ज्योतिर्ज्योतिर्षान्येन शोध्यते ।

(महावीर चरितम् ।)



सार परिवर्तनशील है, इस के प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन होता रहता है, एक प्रकार से ऐसा होना है भी अनिवार्य । समाज, राष्ट, धर्म, सिद्धान्त इन सबमें परिवर्तन होता है । यही कारण है कि आज हमारे चरितनायक श्री पवनजीके हृदयमें भी विचारों का संग्राम मचा हुआ है । आप सोचते हैं कि अञ्जनाके सौन्दर्यकी सभी मुक्तकण्ठसे स्तुति करते हैं वही अब मेरी

धर्मपत्नी हुई है। मैं भी क्यों न उसे देखूं, दूसरे ही क्षण यह विचार बदल गया।

संसारमें ऐसे बहुतसे प्राणी हैं जो कि कर्तव्य-पालन की अपेक्षा इन्द्रियोंकी आराधनाको ही सब कुछ समझते हैं, वे तनिकसे लोभके वश हो अपने सिद्धान्तोंकी हत्या करते नहीं हिचकते, किन्तु नहीं हमारे पवनजी धीर प्रशान्त नायक हैं। आप अपने कर्त्तव्य-पथसे हटना नहीं चाहते। यही विचारकर अञ्जनासे मिलना तो एक ओर रहा, बल्कि अञ्जनाको एक पृथक् भवनमें ठहरवाया। कभी उससे मिलनेको भी चित्तमें न लाते थे। इस प्रकार कितने ही वर्ष (लगभग ११) बीत गये। माता-पिताने पुत्रको बार २ कहा, किन्तु उनकी एक भी न सुनी।

महाराज प्रह्लाद विद्याधरके यहां एक दासी रहती थी इसका नाम तो ललिता था, किन्तु हृदय इसका अत्यन्त कालिमामय था। इस प्रकारका प्रसंग कई बार देखनेमें आता है कि ऐसे भृत्य प्रायः मुंहलगुवे हो जाते हैं। ललिता भी महारानीके मुंह लगी हुई थी, यह और भी अञ्जनाको दुःख देनेमें सहायक बनी।

ललिताका रंग काला और नाक ऊपरको उठी हुई, दोनों आंखें छोटी, किन्तु चमकती हुई सर्पिणीके समान थीं। मूर्खा स्त्रियोंमें जो २ दुर्गुण होने चाहिये वे सब

इसमें थे। अपनेको सर्वाधिक बुद्धिमती समझती थी, निन्दा स्तुति ही एक मात्र इसका काम था । पूर्ण रूपेण कैकेयीकी दासी मन्थराकी प्रकृति इसमें संघटित होती थी । यही नहीं, किन्तु उससे भी एक पग आगे थी ।

वह एक दिन पवनकी माताके पास बैठी हुई थी । प्रसङ्ग चलनेपर वैसे तो अञ्जनाके विषयमें जहर उगलनेमें कसर रखती ही न थी, किन्तु अबतक स्पष्टता कुछ कहने-सुननेको समय न मिला था, वह वहुत दिनसे यह इच्छा अपने मनमें लिए बैठी थी सो आज पूर्ण हुई । महारानी और उसमें इस प्रकारसे बातचीत होने लगी ।

महा०—ललिते ! हमारा पवन यद्यपि विद्या, रूप, सुशीलता आदि गुणोंसे भूषित है किन्तु अञ्जनाके प्रति उसकी विरक्तता कैसी ? अञ्जना सुन्दरी तथा विदुषी है और उच्च कुलमें उत्पन्न भी, फिर क्या कारण है कि अञ्जना के प्रति उसका ऐसा व्यवहार है ! मुझे तो बड़ा आश्चर्य्य होता है ।

ललिता—महारानीजी ! आपको ज्ञात नहीं, हमारे पवनजी बड़े ही सूक्ष्म-दर्शी हैं, सुना है वे विवाहसे पूर्व एक बार महीन्द्रपुर गये थे। सम्भव है वहांपर उन्होंने कोई ऐसी बात देखी हो जिससे अञ्जनाकी ओरसे उनका मन बदल गया हो, मेरी समझमें तो यही आता है ।

अन्यथा और क्या कारण हो सकता है !

महा०—नहीं, ललिता यह तेरा भ्रम है, मैं इस प्रकार की नीच बात अपने मनमें नहीं ला सकती। वह सचमुच देवी है, उसकी सम्पूर्ण चेष्टाएं मुझे बहुत भली मालूम होती हैं। उसके विषयमें मैं ऐसा कदापि नहीं सोच सकती।

ललिता—महारानीजी ! मैंने जैसा सुना था, आपसे निवेदन कर दिया। सच पूछो तो ऐसा करके मैंने अपने कर्तव्यका ही पालन किया है, क्योंकि स्वामीसे अप्रिय सत्य भी न छिपाए, यह शास्त्रोंका वचन है। आगे आप जैसा उचित समझें वैसा सोचें और तदनुकूल विचार स्थिर करें।

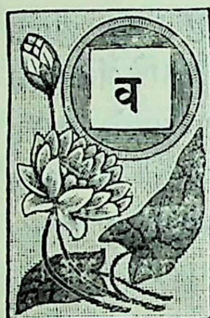
महा०—ललिते ! तो क्या तेरा अब भी यही विचार है कि अञ्जना दुराचारिणी है, नहीं २ ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यह तेरा भ्रम मात्र है।

सप्तम परिच्छेद ।

सखियोंकी बातें ।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति ।

(सुभाषितम्)



र्षा ऋतु है, भाद्रपदका मास । अंधेरी रात्रि, वर्षा रिम-झिम २ हो रही है । आकाशसे बूंदोंके साथ कालिमाकी भी मानो वर्षा हो रही है, गगन-रूपी कृष्ण मेघ-रूपी काला कम्बल ओढ़ हुए विद्युत् (बिजली) रूपी राधिकाके साथ आमोद-प्रमोदमें लीन हैं, मानों विरह-वेदनासे संतप्तोंको और भी दुःख देना चाहते हैं, विरहिणी स्त्रियोंके लिए ये काले बादल काले नागका रूप धारण करके विषकी बूंदें बरसा रहे हैं । आओ प्रिय पाठक-पाठिकाओ! हम आज आपको कुछ अञ्जनाके विरहकी झलक दिखाएं ।

एक सजे-सजाए कमरेमें दोनों सखियां अर्थात् अञ्जना और वसन्त-कुमारी बैठी हुई आपसमें वार्तालाप कर रही

हैं। कमरेमें निस्तन्धता छाई हुई है, जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहां और उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति नहीं है, बात इस प्रकारसे हो रही है।

वसन्त-कुमारी—प्यारी बहिन! मुझसे तो तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता। पवनजी यद्यपि विद्वान् हैं, किन्तु तुम्हारी ओर से यह कैसी उदासीनता! पुरुष जाति का अत्याचार स्त्रियों के प्रति कदापि क्षम्य (मुआफी के लायक) नहीं हो सकता। आज १२ वर्ष होने को आये हैं, एक दिन भी दर्शन न दिए।

अञ्जना—बहिन वसन्तकुमारी! तुम ने जो कुछ कहा मुझ में प्रेम की अधिकता के कारण ही यह तुम्हारी भावना है, अन्यथा पुरुष जाति के प्रति तुम्हारे ये उद्‌गार कदापि न निकलते। बहिन! मैं प्राचीन स्त्रियों जैसी न विदुषी हूं और न पति सेवा करना जानती हूं, किन्तु इतना अवश्य है कि उनके (पति-देव के) प्रति कहा गया कोई भी कठोर शब्द मुझे सह्य नहीं।

वस०—बहिन! आजसे मैं कदापि तुम्हें दुःखी करने की चेष्टा न किया करूंगी, जहां तक बन पड़ेगा ढाढ़स बंधाया करूंगी। बहिन! तुम पतिपरायणा हो, आज बारह वर्ष होने को आए, किन्तु तुम्हारे हृदय में उनके प्रति तानिक सा भी अन्तर नहीं आया। इसीका नाम

विशुद्ध प्रेम है । यद्यपि प्रेम के विषय में तुमसे कुछ भी कहना अनुचित होगा, क्योंकि तुम स्वयम् प्रेम की मूर्ति हो, तथापि प्रसङ्ग-वश कुछ कहती हूं ।

प्रेम मानसिक वासनाओं का चक्रवर्ती राजा है, यह उन में सब से श्रेष्ठ है । इसकी सुमधुर तान से हृदयतन्त्री झंकारने लगती है । गम्भीर गर्त गूंज उठता है, हृदय में उत्साह की नदी प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगती है, कठोर हृदयों को भी नम्र बनाने में यह सहायता प्रदान करता है । सब के हृदय में इसका कोमल अङ्कुर उत्पन्न होता है, परन्तु अनुकूल सामग्री पाकर किसी के हृदय में बृक्ष-रूप में पल्लवित, कुसुमित तथा फलित भी हो जाता है । यह ऐसा मनोरञ्जक कुसुम है, जिसकी सुगन्धि लेने के लिए प्रत्येक सहृदय लालायित रहता है । यह ऐसा देवता है कि जिसकी पवित्र वेदी पर अपने को बलिदान कर देने के लिए हजारों तैयार रहते हैं और सहस्रों ने अपने आपको बलिदान कर डाला । प्रेमदेव की वेदीपर बलि चढ़ जाना एक प्रकार का स्वत्व है; जो लाखों में से किसी भाग्यशाली को ही मिलता है ।

प्रेम से उत्पन्न आनन्द का शाब्दिक वर्णन करना कविकी कल्पना के बाहर की बात है । अनुभवी ही इस का अनुभव कर सकता है, परन्तु वर्णन नहीं कर सकता ।

बहिन अञ्जना ! तुम इस प्रेम परीक्षा में पूर्ण उतरी हो। बहिन ! जिसने अंगूर नहीं खाया क्या वर्णन ही मात्रसे उसके आनन्द को जान सकता है ? कदापि नहीं। प्रेम के सुधा सागर में गोते लगाने वाला ही उस कल्पनातीत आनन्द का अनुभव कर सकता है। प्यारी बहिन ! तुम धन्य हो !!

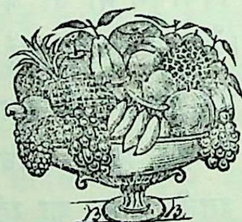
अञ्जना—बहिन वसन्त-कुमारी ! यह तेरे निरन्तर अध्ययनकाही फल है कि तेरे ऐसे उच्च विचार हैं। तेरा कहना सर्वथा ठीक है। बहिन ! मैं प्रेम की परख क्या जानूं।

वसन्त०—बहिन अञ्जना ! तुम साक्षात् मूर्तिमती देवी हो। बहिन ! मैं तो प्रेमकी यह एक परिभाषा (तारीफ़) जानती हूं कि पति-वियोगमें भी जो वैसा ही बना रहे, वही वस्तुतः प्रेम है। मैंने हर समय तुम्हें पतिके प्रति कभी कुवाच्य तो दूर रहा एक क्षणभर भी उदासीन नहीं पाया।

अञ्जना—बहिन ! तेरा मुझमें अधिक प्रेम है, यही कारण है कि तू मेरी इतनी प्रशंसा कर रही है, अन्यथा मैं किस योग्य हूं। यह एक स्वभाविक नियम है, कि जो जिसको अधिक प्रिय होता है, वह उसकी शत-मुखसे श्लाघा किया करता है। यही बात मेरे विषयमें भी घट सकती है, अन्यथा मैं तो ऐसी......हूं कि पति-सेवासे भी वञ्चित हूं।

वसन्त—बहिन अञ्जना ! तुम हताश न होओ, ईश्वर तुम्हारी अवश्य सुनेगा। सुना है कुमार कभी २ तुम्हारा प्रसङ्ग चलनेपर दीर्घ निःश्वास भी लिया करते हैं, इससे स्पष्ट है कि इसमें अवश्य कोई कारण है। सुना है कुमार किसी युद्धमें जानेवाले हैं, वहांसे लौटनेपर आग्रह-पूर्वक मैं अनुनय विनय कर अवश्य ही इस रहस्यका उद्भेदन करूंगी। आशा है कुमार शीघ्र ही तुम्हें अपने प्रेम-दानसे सन्तुष्ट करेंगे।

अञ्जना टकटकी लगाकर वसन्त-कुमारीकी ओर बड़े ध्यानसे उसकी बात सुन रही थी, बात समाप्त होने पर एक दीर्घ विश्वास लिया और यह करुणामय अलाप इस प्रकार समाप्त हुआ।



अष्टम परिच्छेद ।

सम्मिलन ।

सुचरितचरितं विशुद्धदेहं ।
नहि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति ॥

(मृच्छकटिकम्)



तः कालका समय है, मन्द २ वायु अपने हलके हलके झोकोंसे विकसित नवमल्लिका को ईषत्-कम्पित कर देती है। आहा! राजभवनके अन्तर्गत उद्यानकी शोभा निहारने ही योग्य है। वह देखो! कोई सुन्दरी फूलोंको तोड़ रही है। दीन भौंरे की भी क्या ही विचित्र दशा है, उधर उस तरुणीके विकसित मुख-कमलका लोभ, इधर वायुसे हिल्लोलित विकच कञ्ज कलियां अपनी ओर बुलाती हैं। योंही बेचारा भ्रमर गुनगुनाता भुनभुनाता इधरका मारा उधर फिरता है। सौकी एक बात तो यह है कि महाराज श्रीरत्नपुराधीश्वरके भवनका पृष्ट भाग जहांपर यह वाटिका स्थित है सर्वांशमें नन्दन-काननको तिरस्कृत करता है।

महाराज एक शिलापर बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं, उनकी आकृति से प्रतीत होता है कि मानों किसी के आने की प्रतीक्षा में हैं। महाराज इस समय साधारण वेष-भूषा में बहुत ही भले लगते हैं। ओहो! वह देखो हमारे चरितनायक श्रीपवन जी भी आरहे हैं। आते ही पिता जी को साष्टांग प्रणाम किया, महाराज की आज्ञा पा नम्रता पूर्वक बैठ गए। अब इस प्रकार से पिता-पुत्र में बातें होने लगीं।

महाराज—पुत्र! लङ्केश्वर रावण का पत्र आया है, जिस में लिखा है किसी राजापर चढाई करनी है, सो आप को मेरी सहायता करनी होगी। इसलिए पुत्र! मेरी ओर से तुम्हें ही जाना पड़ेगा, क्योंकि अब मैं इस योग्य नहीं रह गया हूं कि किसी भी युद्ध में सम्मिलित होऊं।

पवन—पिताजी! रावण एक वेदज्ञ ब्राह्मण है और शूरवीर भी। यद्यपि आजकल उनकी कीर्ति में पहिले की अपेक्षा कुछ कालिमा के छींटे लग गए हैं, क्योंकि सुना गया है कि ऋषि लोगों को अब वह अधिक पीड़ा पहुंचाने लगा है, तथापि हम से सहायता मांगी गई है, तो एक सच्चे क्षत्रिय की भांति हम अवश्य उसकी सहायता करेंगे, किन्तु न्याय का गला घोंटने में हम कदापि साथ न देंगे।

महाराज—पुत्र! तुम्हारा विचार सर्वथा ठीक है,

किन्तु एक बार तो वहां जाना ही पड़ेगा। हां, यदि तुम्हें उचित जान पड़े तो स्थिति को देखकर ही सहायता करना अन्यथा नहीं।

पवन—पिताजी! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य्य है, मैं आज ही प्रस्थान करता हूं। यदि आप आज्ञा दें, तो मन्त्रि-पुत्र सत्यव्रत को भी साथ लेता जाऊं।

महाराज—पुत्र! सत्यव्रतको अवश्य अपने साथ ले जाना, वह तुम्हारा मित्र है और सहायक भी। वह तुम्हें छायाकी भांति कदापि अपने से पृथक् नहीं होने देता। तुम्हारे क्षण भर के वियोग में घबरा जाता है। अतः उसे अवश्य साथ ले जाना।

इस प्रकार पिता की आज्ञा ले पवन भवन से बाहर निकले। भृत्यु को आज्ञा दी कि सत्यव्रत को बुलावे। आज्ञानुसार सत्यव्रत आ गए। कुमार से बोले—"मुझे क्या आज्ञा है? आज्ञा कीजिए; सेवक सदा उपस्थित है।"

पवन—मित्र! पिताजी ने आज्ञा दी है कि महाराज रावण ने किसी राजा पर चढाई की है। सो मेरी तरफ से तुम्हें और सत्यव्रत को जाना होगा। इसलिए भाई! सेना के लिए आज्ञा दी जावे और तुम स्वयम् भी अपनी प्रणयिनी से आज्ञा ले आओ।

सत्यव्रत—मित्र ! तुम सदा मुझे उलाहना सा ही दिया करते हो, अब त्रैलोक्यसुन्दरी अञ्जना के साथ तुम्हारी भी तो खूब पटती होगी। आप भी तो पूर्ण रसिक हैं और काम-शास्त्र के ज्ञाता भी।

पवन—(मन ही मन एक ठंडी सांस लेकर) अस्तु-मित्र ! अब अधिक देर करने का समय नहीं है। मैं आप की प्रतीक्षा करता हूं, आप हो आइये।

इस प्रकार सत्यव्रत को आज्ञा देकर पवन अपने मन ही मन एक प्रकार का कष्ट अनुभव करने लगे। थोड़ी देर के बाद ही सेना भी प्रस्तुत हो गई, इतने ही में सत्य-व्रत भी घर से लौट आया। अब दोनों मित्र सेना के साथ चल दिये।

दिन भर चलने पर रात्रिको एक स्थान पर जोकि अत्यन्त रमणीय था, पड़ाव डाला। निशानाथ अपनी चांदनी फैलाये हुए थे कि इतने में प्रेमीजनों को रुलाने वाला चकवा-चकवी का करुणाक्रन्दन सुनाई पड़ा। पवन बोले—"मित्र। यह कौन पक्षी हैं जो इस प्रकार करुणा-जनक शब्द कर रहे हैं ?"

सत्यव्रत—मित्र ! यह चक्रवाक-दम्पति (चकवा चकवी) हैं, जो प्रकृति के नियम से रात्रि में एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। ये एक भूले भटके शुष्क हृदय

वाले को प्रेम की शिक्षा दे सकते हैं । मित्र ! वस्तुतः यदि दाम्पत्य प्रेम की शिक्षा लेनी हो, तो इन से लेनी चाहिए।

पवन—मित्र ! यह कैसा स्वाभाविक नियम है, मयूर मेघ को नृत्य करने लगता है, चकोर चन्द्र-ज्योत्स्नाको देख प्रसन्न होता है, सहृदय काव्यरूपी अमृत से बहती हुए वाच्यार्थ विलक्षण व्यंग्यार्थ स्वरूप रस के आनन्द में मग्न हैं, शुष्क वैयाकरण नहीं । उलूक सूर्य की प्रकाश महिमाका का अनुमान भी नहीं कर सकता, अथच वधिर विपञ्ची स्वरों का ।

सत्यव्रत—मित्र ! तुम्हारा कहना ठीक है । उस जगत्पिता परमात्मा की सृष्टि विचित्र व्यापार है, इसके विषय में (कवयोऽप्यत्र मोहिताः) कह सकते हैं ।

पवन—मित्र ! मैं तुम से एक बात कहना चाहता हूं, वह कि आपको स्मरण होगा, किन्तु न जाने आज मेरा मन कैसा कुछ हो रहा है । मेरा मन कहता है कि उसे पूरा धोखा हुआ ।

सत्य०—मित्र ! वह बात तो विश्वास के योग्य न थी, और मुझे यह आशा भी आप से न थी, कि आप इस जरासी बात को इतना तूल देंगे । मैं इसे उस समय केवल एक परिहास किम्बा तत्कालीन उठा हुआ मान-सिक उद्वेग-मात्र समझता था । भाई ! आपने भी गजब

किया। एक निरपराध अबला बालिका को इस प्रकार व्यर्थ ही कष्ट दिया। उस हृदय की तन्त्री को अपने से पृथक रक्खा, उस नव-मल्लिका के सुमनों की मालका एक दम इतना निरादर! उस हृदय-हारिणी अनुरक्ता सतीका इतना अपमान!! आज बारह वर्ष हो गये आपने सुध तक न ली!!!

ववन—मित्र! सचमुच मैं उस देवी के सम्मुख महा अपराधी हूं। हा! मैंने अज्ञान-वश उस प्रेमकी मूर्तिकी अपने हृदय-रूपी सिंहासन पर बैठा कर पूजा क्यों न की वास्तव में मैंने यह भारी अनर्थ किया। यद्यपि मैं कदापि भ्रम-वश स्त्री-जाति के प्रति अपने हृदय में घृणा के भाव न लाया। तथापि मुझ से जो निन्दनीय कार्य्य हो गया है, वह पशुता शून्य नहीं है, इसका मुझे आमरण दुःख रहेगा।

सत्य०–मित्र! दुःख और पश्चात्ताप करनेकी अधिक आवश्यकता नहीं, अब तो वह काम करना चाहिये जिससे उस निरपराध सतीको सुख मिले। मित्र! उस देवीने बड़े बड़े कष्ट उठाये हैं।

पवन–तब आप मेरे लिये क्या सम्मति देते हैं, अब युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए जा रहे हैं, यह एक भीरुता होगी; कि मैं पुनः घरको वापिस लौटूं।

सत्य०-मित्र ! इसकी आप चिन्ता न करें, मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा, आप शीघ्र ही उस देवीको सान्त्वना देकर आ जाएं। ऐसा करना कदापि अनुचित न होगा।

पवन-अच्छा मित्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा।

इस प्रकार राजकुमार पवन सत्यव्रतसे विदा हुए, यह समय रात्रिका था, कोई १२ बजे रात्रिके अञ्जना देवी जिस भवनमें रहती थीं, वहां पहुंच गये। राजकुमार पवन का हृदय कांप रहा था, वे उस बड़े अपराधीके समान जान पड़ते थे, जो न्यायाधीशके सम्मुख अदालतमें उपस्थित होता है। अस्तु, यथाकथञ्चित् राजकुमार पवनजी ने भवनके अन्दर प्रवेश किया, देखा कि सामने ही वसन्त-कुमारी और उसकी प्रिय सखी अञ्जना बैठी हुई है। दृष्टि मिलते ही चित्र-लिखितकी भांति निस्तब्ध रह गये। कुछ काल पीछे जबकि उद्वेगजनित भाव शान्त हुए तो इस प्रकार वार्तालाप होने लगी।

बसन्त०-आइये, आज किधरको भूल पड़े, आपके दर्शनोंसे वञ्चित रहते तो आज बारह वर्ष बीत चुके। आखिर ऐसा हमारी प्रिय सखीने कौनसा अपराध किया है जिसका ऐसा कठोर दण्ड दिया गया है। स्त्री-जातिके प्रति इतना अस्वाभाविक असहयोग, यह आप जैसे विद्वान् के लिये बड़ी लज्जाकी बात है। जब आपके समान

विद्वान् ही इस प्रकारका आदर्श सर्वसाधारणके सम्मुख रखेंगे, तो सामान्य व्यक्ति क्यों न इसीको आदर्श मानें। उदाहरणार्थ कहे देती हूं क्षमा कीजियेगा। जैसे राजा नल ने जूआ खेला था, उसीका आदर्श कतिपय मनचले नव-युवक अपने अन्दर भी घटाते हैं और वे अपने हृदयकी दुर्बलताको इस प्रकारकी अमान्य युक्तियां देकर चरितार्थ करते हैं। क्या आप यह आशा रखते हैं कि आपका यह कार्य्य दाम्पत्य-प्रेमके रससे वञ्चित कर्तव्यच्युत दुर्बल चरित्र वाले भूले-भटके नवयुवकोंको पथ-प्रदर्शक होगा? कदापि नहीं।

पवन—वसन्त-कुमारी! तुम बड़ी विदुषी हो, और सम्भवतः तुमसे बढ़कर तुम्हारी प्रिय सखी। मैं युक्ति-वाद से न तो तुम्हें जीत सकता हूं और न इस प्रकारकी मैं कोई चेष्टा ही करूंगा। मैं केवलमात्र अपना अपराध स्वीकार करता हुआ शान्तिपूर्वक तुम्हारी भर्त्सनाओं (फटकार) का लक्ष्य बनना चाहता हूं।

बसन्त०—कुमार! सुना था, आज आप युद्धमें गये थे, किन्तु इस प्रकार अचानक आपका यहां आना विस्मयसे खाली नहीं। बिना कार्य्यके कारणकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः आप यह स्पष्टतया बतलाइये, इतने दिनों तक आपके न आनेका कारण क्या है।

पवन–वसन्त-कुमारी ! बात तो वास्तवमें यह है कि एक बार मैं विवाहसे पूर्व महीन्द्रपुर गया था, मेरी बलवती इच्छा थी कि एक बार विवाहसे पूर्व अञ्जनाको देखूं। जब मैं अञ्जनाके भवनोंके समीप पहुंचा, तो मुझे कुछ सखियोंकी वार्तालाप सुनाई पड़ी जिसमें वरके विषयकी बात हो रही थी। एक विद्यदपर्वकी प्रशंसा कर रही थी और दूसरी मेरी, इस पर अञ्जनाके यह शब्द थे कि बहुत से गुड़के ढेरकी अपेक्षा मिश्रीकी एक डली कहीं अच्छी होती है। उसी दिन मैंने यह कठोर प्रतिज्ञा की, कि मैं बारह वर्ष तक अञ्जनासे कदापि न बोलूंगा। यही कारण है कि मैं इतने दिनों तक अञ्जनाकी ओरसे उदासीन रहा। आशा है तुम मेरे सन्देहोंको निवृत्त करोगी। आज अचानक आनेका यही कारण है।

वसन्त०–(अञ्जनाकी ओर देखकर और हंसती हुई) तब तो महाराज ! आपको अवश्य धोखा हुआ। ये शब्द हमारी अञ्जनाके कदापि नहीं हो सकते। उस दिन हम सब समवयस्का (हमउम्र) सखियां बैठी हुई परिहासमात्र मनोविनोदके लिये करती थीं और ये शब्द पुरोहित ईशानदेवकी पुत्री लक्ष्मीके थे जोकि श्रीअञ्जना देवीको स्वाभाविक चिढ़ानेके लिए कहे गये थे। कुमार ! प्रथम आपको इस बातका निश्चय तो कर लेना चाहिये था।

यदि आप ऐसा करते तो क्यों व्यर्थ हमारी सखीको इतने दिन विरहाग्निमें जलना पड़ता ।

पवन–बसन्त कुमारी ! मेरा हृदय इसीलिये आज मुझे अपराधी होनेके लिये कह रहा था । अब मैं क्या करूं भूल हो गई, तुम्हारी सखीका मैंने दिल दुखाया है, इसलिये जो कुछ भी तुम मुझे दण्ड देना उचित समझो दो, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा ।

बसन्त०–कुमार ! आपने कहा है जो तुम उचित समझो, दण्ड दो । मेरा तो इस विषयमें यह मत है कि मनुष्यके प्रत्येक कार्यमें भूल होना अनिवार्य्य है, अर्थात् ईश्वरके ही समस्त कार्य्य इस दोषसे मुक्त होते हैं मनुष्यके नहीं, यदि इतनेपर भी आप दण्ड लेना ही चाहते हैं, तो मैं कौन होती हूं, जो दण्ड दूं, हमारी प्रिय सखी न्यायाधीश (जज) है, वही आपको यथार्थ दण्ड देगी ।

ऐसी कहती हुई बसन्त-कुमारी अञ्जना देवीके निषेध करनेपर भी बाहर चली गई । अञ्जना व्रीडावनतवदना मुग्धासी खड़ी रही, अब अवसर पाकर पवनजीने इस प्रकार बातें करनी आरम्भ कीं ।

पवन–प्रिये ! तुम मुझे जो कुछ भी दण्ड देना चाहो, दे डालो, मैं उसे सहनेके लिये प्रस्तुत हूं ।

अञ्जना–महाराज ! मुझे इस प्रकार क्यों लज्जित करते

हैं, परन्तु हां, मुझे एक बात और कहनी है, वह यह कि आपने युद्धसे केवल मेरे लिए ही लौटकर अच्छा नहीं किया। यह कार्य्य क्षत्रियोचित नहीं हुआ। आप जैसे गम्भीरको इतनी तरलता दिखानी उचित न थी।

पवन—प्रिये! तुम सच्ची क्षत्राणी हो, क्यों न तुम्हारे मुखसे ऐसे शब्द निकलें। मैं युद्धमें गया था सही और अब शीघ्रही पुनः जा रहा हूं। आज आकस्मिक कई ऐसी घटनाएं हुईं जिनके कारण विवश होकर मुझे आना पड़ा। प्रिये! मुझे कायर न समझो, किन्तु हृदयके अंदर एक विशेष प्रकारका उद्वेग हो गया था, वही विवश कर मुझे यहां तक ले आया, अन्यथा युद्धके बाद भी तुमसे मिल सकता था।

इस प्रकार उनके प्रेममय अनेक कथोपकथन हुए, जिनको लिखकर हम यहां पाठक-पाठिकाओंका समय व्यर्थमें ही नष्ट करना नहीं चाहते। भुक्तभोगी पाठक-पाठिकाएं जिनमें कि एतद्विषयक हमसे कहीं बढ़-चढकर सहृदयता, विदग्धता तथा सुकुमारता है, वे उनके उस चिरवियोगके सम्मिलनका अच्छा चित्र अपने हृदय-पट पर चित्रित कर सकेंगी।



नवम परिच्छेद ।

भाग्यकी करतूत ।

नरं वामारम्भः कमिव न विधाता प्रहरति ।
(चण्डकौशिकम्)



सारमें किसी मनुष्यके हार्दिक भावोंको जानना कुछ सरल नहीं है। यह एक कठिनतर समस्या है, कोई ऊपरसे उदास चरित तथा साधु प्रतीत होता है, किन्तु हृदयकी ईश्वर ही जाने। ऐसा मनुष्य मनुष्यकी पदवीसे कहीं बढ़ा हुआ होता है, जो सर्वतः एक जैसा हो।

ललिता की प्रकृति भी ईश्वर ने कुछ ऐसी ही बनाई है। बोलने में अत्यन्त मधुरिमा है, ऐसा मधुर वाक्य विन्यास कहीं अन्यत्र न पाइयेगा। इसका स्वभाव दूसरे को दुःखी देखकर प्रसन्न होने का है। संसार में ऐसे अनेक होते हैं जो दूसरे के सुख को नहीं देख सकते, यद्यपि परमात्मा ऐसों की मनःकामना पूर्ण नहीं होने देते इसीलिए यह समस्त संसार बचा हुआ है, अन्यथा एक

दिन में जैसी २ प्रबल इच्छाएं उनकी हुआ करती हैं इस के नष्ट होने में कोई सन्देह न रह जाए।

आज ललिता श्री महारानी जी से कुछ घुटघुट कर बातें कर रही है, लक्षण अच्छे नहीं दीख पड़ते, आइये हम भी आपको उसके प्रपञ्च का कुछ परिचय कराएं, बातें इस प्रकार से हो रही हैं:—

ललिता—महारानी जी! और भी कुछ सुना है, देखो न, मैं उस दिन आप से कहती न थी कि सम्भवतः अञ्जना के विषय में पवन जी चरित्र-विषयक सन्देह रखते हैं। यही कारण है कि अञ्जना के प्रति उनका इतना उदासीनता पूर्ण व्यवहार है! आज मैं अञ्जना के भवनों में गई थी, उसकी धूर्ता सखी बसन्तकुमारी ने मेरी बड़ी आवभगत की और कहा कि उस दिन युद्ध में जाने से पूर्व पवन जी अञ्जना के भवनों में आये थे। अब कुमार ने अपनी भूल को स्वीकार कर लिया है, पवन जी को युद्ध में गये हुए चार मास के लग भग हो गया है, अञ्जना को चार मास का गर्भ है। मेरी तो बुद्धि काम नहीं देती, क्या कभी यह भी सम्भव है?

महारानी—ललिते! तू तो एक साथ ही बहुत कुछ कह गई। मुझे विश्वास नहीं होता कि पवन जी युद्ध के समय वीरोचित सत्साहस को न दिखाकर इस प्रकार स्त्रैण

बने । मेरे अनेक बार समझाने बुझाने पर भी जब अञ्जना की ओर से कुमार का भाव उदासीन ही रहा, तो इस बात का मुझे कैसे विश्वास हो कि कुमार युद्ध में जाने से पूर्व अञ्जना के पास गए होंगे ।

ललिता—महारानी जी ! यह सब उसकी धूर्ता सखी वसन्तकुमारी का पाजीपन है, किन्तु हम लोगों की आंखों में धूल झोंकना कोई ऐसा वैसा काम नहीं ।

महारानी जी ! श्री महाराज से इस विषय में अनुमति ले लेनी उचित होगी, क्योंकि कार्य्य करने से पूर्व विचार लेना अच्छा होता है, ताकि परिणाम में सुखदाई हो । वह देखिये, महाराज भी इधर ही आरहे हैं । देखते ही देखते महाराज भी आ गए, अब इस प्रकार से बातें होने लगीं ।

महारानी—महाराज ! कुछ वसन्तकी भी खबर है, आपके यहां क्या कुछ हो रह है । सुना है, अञ्जना को चार मास का गर्भ है, उसकी मक्कारा सखी वसन्त-कुमारी कहती है कि युद्धमें जाने से पूर्व कुमार अञ्जना के भवनों में आये थे, हमें तो इस बात का विश्वास नहीं होता ।

महाराज—है ! यह क्या !! सर्वनाश !!! क्या चार मास का गर्भ है, और मुझे अबतक पता न चला, अवश्य कुछ दालमें काला है, क्योंकि पवन की प्रकृति बड़ी गम्भीर

है, वह कदापि इस बात को पसन्द नहीं कर सकता कि युद्ध के समयमें भोग की लिप्सा करे। यह सब उन धूर्ताओं का पाप-रहस्य है, उनको एक दम भवनों से निकाल दिया जाए, अन्यथा निन्दा है।

महारानी—जो महाराज की आज्ञा। आप उचित समझें तो महीन्द्रपुर उसके पिता को भी पत्र डाल दिया जाए, क्योंकि कहीं ये धूर्ताएं वहां जाकर झूठी-सच्ची न लगा दें।

महाराज—तुमने जो कुछ कहा सब ठीक है, मैं अभी पत्र डालता हूं। ऐसा करना बहुत अच्छा होगा। अब देर करने की कोई आवश्यकता नहीं।

महाराज इस प्रकार कहकर चल दिये, अब रानीने आज्ञा दी, कि उन दोनोंको उपस्थित किया जाए। ललिता अपने चित्तमें प्रसन्न होती हुई चली और अञ्जनाके महलों में जा धमकी। वसन्त-कुमारीने देखते ही कहा—"आओ बहिन! अब तुम बड़ी कृपा करने लगी हो, जो कि इस प्रकार जल्दी जल्दी दर्शन देती हो।"

ललिता—तुम दोनोंको श्रीमती महारानीजीने स्मरण किया है, शीघ्र ही चलना होगा।

वसन्त०—क्यों, आज यह आकस्मिक शीघ्रता कैसी? अस्तु बैठो, कुछ खा पी लो, तब चलती हैं। तुम्हें मुंह-

ज़बानी भी कुछ कहा था कि नहीं क्या काम है ? मुझे आशा है तुम्हें इस बातका पता अवश्य होगा ।

ललिता–बहिन वसन्त-कुमारी ! मैं सत्य कहती हूं कि मुझे कुछ भी इस बातका पता नहीं ।

अञ्जना–बहिन वसन्त-कुमारी ! तुम्हारा स्वभाव व्यर्थ प्रत्येक काममें तर्कना करनेका पड़ गया है । जब माताजी बुलाती हैं, तो चलनेमें आनाकानी कैसी । गुरुजनोंकी आज्ञाको बिना ननु नच किये मानना हमारा परम कर्तव्य है । चलो, जल्दी चलें ।

वसन्त०–नहीं बहिन ! मैंने तो श्रीमती महारानीजीकी आज्ञा उल्लङ्घनकी कोई बात नहीं कही । ऐसा करना मैं महापाप समझती हूं । एक आर्य्य-बालिकाके हृदयमें गुरु-जनोंकी आज्ञाके प्रति कदापि अवहेलनाका भाव नहीं आ सकता । उनका वैदिक धर्म्म उन्हें इस कारकी कुशिक्षा नहीं देता, प्रत्युत (मातृमान्, पितृमान्, आचार्य्यमान् पुरुषो वेद) की शिक्षा देता है ।

इस प्रकार बातचीत होनेके बाद वे सब श्रीमहारानी जीके महलोंकी ओर चलीं । अञ्जनाका चित्त कुछ खिन्न था, वह अपने मनमें सोचती थी कि यह भी अनिष्ट होने की सूचना देता है । जगदीश्वर मेरे प्राणेश्वरको प्रसन्न रक्खे, जबसे युद्धमें गये हैं, एक भी पत्र नहीं आया, यद्यपि समय

समयपर पत्र डालनेका वचन दे गये थे। वे गर्भकी सूचना से कितने प्रसन्न होंगे। इसी भान्ति वह अपने मानसिक सङ्कल्प-रूपी मनो-मयूरको प्रसन्न करनेमें लगी हुई थी कि श्रीमहारानीजीका भवन भी आगया। ये तीनों अंदर गईं। अकस्मात् श्रीमहारानीजीके क्रोधारुण नेत्र देख अञ्जना अत्यन्त विस्मित हुई, क्योंकि इससे पूर्व उसने महारानी जीको ऐसी दशामें कदापि न देखा था। अब इस तरह बातें होने लगीं —

महा०—क्यों री वसन्त! क्या यह ठीक है कि अञ्जना गर्भवती है? तूने इस बातकी मुझे सूचना क्यों न दी? अञ्जना जो भी अच्छा अथवा बुरा काम करे, उसका उत्तरदायित्व केवल मात्र तुझपर ही है, क्योंकि तू इसकी सखी है और हर समय इसके पास रहती है।

वसन्त०—महारानीजी! आपने जो भी कुछ कहा सब ठीक है, किन्तु राजकुमार पवन यह कह गये थे कि कदाचित् गर्भ रह भी जाए, तो जबतक मैं न आऊँ, तबतक इस बातकी किसीको सूचना न देना, क्योंकि ऐसा करनेसे अञ्जनाके चरित्र विषयमें सर्वसाधारण सन्देह करने लगेंगे। यही कारण था कि मैंने श्रीमतीजीको अभीतक इस शुभ सम्वादकी सूचना न दी।

महा०—मुझे तो इस बातका विश्वास नहीं होता कि

पवन ऐसा करेगा । वह अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि तथा विचारशील नवयुवक हैं । और यह युक्ति इस सत्यके सामने कोई मूल्य नहीं रखती कि बारह वर्षतक तो राजकुमार पवन अञ्जनासे वार्तालाप भी न करे, अथच युद्धके समय में इतनी घनिष्ठता पैदा कर जाए । भला ऐसी बातोंपर भी ईश्वरने जिसे बुद्धि दी है, वह विश्वास कर सकता है ?

वसन्त०—महारानीजी ! क्या आपका अभीतक पूर्ण रूपसे यही विश्वास है कि पवनजी नहीं आये थे ? अब हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं जिससे आपको विश्वास दिलाया जाय, विशेषकर ऐसी दशामें जबकि श्रीमतीजी का हमपर पूर्णरूपेण अविश्वास है ।

महा०—धूर्ताओ ! मुझे धोखेमें डालना चाहती हो, किन्तु यह तुम्हारे किये न बनेगा । बस अधिक लबड़धोंधों मत मचाओ । मैं कुछ सुनना नहीं चाहती, एकदम मेरे भवनोंसे निकल जाओ; क्योंकि तुम्हारे यहां रहनेसे हमारी निन्दा होती है ।

वसन्त०—महारानीजी ! अब हम अबलाएं कहां जाएं, आप ऐसा न करें, किञ्चित् गाम्भीर्य्यसे काम लें । ऐसे समय शीघ्रता करनी अच्छी नहीं, यद्यपि हम चली जाएंगी, क्योंकि अब हम अबलाओंका क्या ज़ोर है, तथापि धैर्य्यसे काम लें ।

महा०—धूर्ते ! मेरी आज्ञाका इतना अनादर ! तेरा इतना साहस !! मुझसे ही धृष्टता !!! चल हट, मेरे सामने से हट जा, मैं तुम्हें जरा देर भी यहः देखना नहीं चाहती, मैं तेरे लम्बे व्याख्यानको सुननेके लिए प्रस्तुत नहीं ।

अञ्जना—माताजी ! क्षमा करो, जबतक आपके पुत्र आएं, आप हमें न निकालें, उनके आनेपर सत्यासत्यका निर्णय हो जाएगा । माताजी ! आपसे मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं, इसे आप स्वीकार कीजिये । मैं आपकी पुत्रीके समान हूं । अपनों पर कोई भी इस प्रकारका व्यवहार नहीं किया करता ।

महा०—अब मैं अधिक कुछ भी सुनना नहीं चाहती, तेरे प्रति जो मेरे आदर और दयाके भाव थे, वे सब घृणा और क्रोधरूपमें परिणत हो गये । बस अब यदि अपना भला चाहती हो तो एकदम यहांसे चली जाओ ।

अञ्जना—आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य, किन्तु यह आप मुझपर अन्याय कर रही हैं ।

महा०—हट कहींकी कुलटा !

इस प्रकार धक्का देकर अञ्जना और उसकी सखीको महलोंसे बाहर निकाला । उस समयकी दशाका वर्णन करना हमारी सामर्थ्यके बाहरकी बात है, कि अञ्जनाके

दिलपर क्या २ गुज़र रही होगी । उसकी हिन्दू-धर्म्मके प्रति क्या कुछ श्रद्धा होगी । वह आर्य्य-ललना उस कठोर तर परीक्षामें उत्तीर्ण हुई थी; जो कि अत्यन्त भयावह थी।

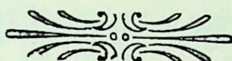
राजभवन से बाहर निकल दोनों सखियां अति साधारण वेश-भूषामें नगर के बाहर आईं, क्योंकि राज्यभर में उन्हें रहने की आज्ञा न थी । अब दोनों सखियां निरुद्देश्य जङ्गल की ओर रवाना हुईं । यह समय प्रातःकाल का था, चलते २ दोपहर हो गया । भगवान् भुवनभास्कर अपनी प्रखर किरणों से संसार को संतप्त करने लगे, अब दोनों सखियां एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गईं और वार्तालाप इस प्रकार होने लगीः—

बसन्त०—वहिन अञ्जना ! देखो न जिस आर्य्य वैदिक धर्म्म के पुरोहित श्री ईशानदेवजी इतनी डींगें हांका करते थे, मेरी तुच्छ बुद्धि में तो वह अत्यन्त सङ्कीर्ण है, तुम्हें उसी सङ्कीर्णता के कारण कितने कुछ कष्ट सहने पड़े हैं।

अञ्जना—नहीं वहिन ! तुम्हारा यह विश्वास निर्मूल है, किसी व्यक्ति विशेष की भूल को धर्म्म की सङ्कीर्णता बताना कदापि उचित नहीं ।

इस प्रकार अनेक संशयोच्छेदी सत्परामर्श होने के

अनन्तर वे दोनों सखियां दिन भर भूख-प्यास का कष्ट सहन करती चलती रहीं, रात्रि को एक वृक्ष के नीचे पड़ अनाथ सो रहीं।



दशम परिच्छेद।



दुःखपर दुःख।

:o:

अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम्।
(कादम्बरी)



कृति का कौतूहलोत्पादक व्यापार सहृदय मनुष्य के हृदय पर गहरा प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। इस में नये २ परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु चाहिए देखने वाली आंखें। आज जो सुमन अत्यन्त मनोरम दिखलाई पड़ते हैं, कल माली उन्हें तोड़ डालेगा। सूर्य का प्रकाश पुञ्ज तम को विनष्ट करता है, किन्तु रात्रि के आगमन पर सब फीका पड़ जाता है। यही दशा दिन में निशानाथ की है। तात्पर्य

यह है कि मनुष्य के लिए विपत्तियों का सामना करना एक ऐसा भाव है जो कि उसका महत्त्व बढ़ा देता है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कभी न कभी विपत्तियों का भी लक्ष्य बनता ही है, किन्तु उन में निज साहस न खो बैठना ही सर्व श्रेष्ठ है और सफलता का पथ-प्रदर्शक भी। आज हमारी चरितनायिका श्री अञ्जनादेवी को भी उन्हीं कठिनाइयों में होकर गुज़रना पड़ रहा है, किन्तु आप भी अपने गाम्भीर्य्यादि गुणों का परिचय दिये जा रही है।

महाराज महीन्द्रराय जी अपने भवन के एक सजे सजाए कमरे में बैठे अपनी रानी से बातें कर रहे हैं। वार्तालाप इस प्रकार से हो रही हैः—

महाराज—प्रिये ! क्या किया जाए, मेरी तो बुद्धि काम नहीं देती, बड़ी कठिन समस्या है; मुझे तो सहसा इस पत्र पर विश्वास नहीं होता, कहीं किसी शत्रु का ही तो रचा यह षड्यन्त्र नहीं।

महारानी—महाराज ! मुझे तो इस में तनिक भी सन्देह नहीं रह गया कि यह रत्नपुराधीश के हाथ का लिखा पत्र नहीं, क्योंकि हस्ताक्षर ठीक ठीक मिलते हैं। हा ! मेरे खोटे भाग्य !! मुझे अञ्जना से कदापि ऐसी आशा न थी।

महाराज--प्रिये ! अञ्जना एक अत्यन्त सुशीला और सुशिक्षिता बालिका है, सहसा इस बात को मानने के लिए मैं प्रस्तुत नहीं कि वह ऐसा काम करेगी, किन्तु रत्नपुराधीश की बातों पर किस प्रकार से अविश्वास लाऊं।

ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में एक दासी दौड़ी आई, महारानी जी को हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगी, कि "बाहर दो स्त्रियां खड़ी हैं; जो कि आप से मिलना चाहती हैं (स्मरण रहे यह दासी अञ्जना के बाद की रखी हुई है अतः यह अञ्जना को नहीं पहिचानती)।

महारानी--जाओ, उन्हें यहां बुला लाओ।

दासी आज्ञा पाकर चली गई, इतने ही में दो युवतियों को साथ में लिये आ पहुंची। आगन्तुकाओं ने झुककर प्रणाम किया और महारानी के मुख की ओर टकटकी लगाए खड़ी रहीं। उनके देखने के भाव से प्रकट होता था, मानों दया की भिक्षा चाहती हैं। इसपर महारानीने कहाः—

महारानी–अञ्जना ! तुम मेरे सामनेसे चली जाओ। क्या तुझे मुंह दिखलाते लज्जा नहीं आती ? निर्लज्जताका कोई सीमा होती है। मुझे तुझसे यह आशा न थी कि तू ऐसी निकलेगी ! हा ईश ! आर्य्य-ललनाओंके कर्तव्यका इतना अपमान !! मुझे तेरे देखनेमें भी लज्जा आती है।

वसन्त०—महारानीजी! अञ्जना पूर्णरूपेण निर्दोष है, यह अनुचित भावना अपने हृदयसे आप निकाल दीजिये। कुमार पवनके आनेपर आपको स्पष्ट विदित हो जायगा, कहीं ऐसा न हो कि आपको पीछेसे पछताना पड़े।

महारानी—वसन्त! तू क्यों व्यर्थ बकबक कर रही है, तूने ही इसका सर्वनाश किया है; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। बस, अब मैं अधिक नहीं सुनना चाहती। यद्यपि अञ्जना मेरी इकलौती पुत्री है, तथापि स्नेहको मैं कर्तव्य के सामने तुच्छातितुच्छ समझती हूं।

महाराज—प्रिये! क्यों तुम व्यर्थ इनसे विवाद करती हो, मेरे यहां पापियोंके लिये स्थान नहीं, अतएव मैं अपनी पापिनी सन्तानके साथ भी वही व्यवहार करूंगा जो कि साधारण प्रजाके साथ करता आया हूं, इस लिये मैं आज्ञा देता हूं कि बिना किसी प्रकारका ननुनच किये तुम यहां से एक दम चली जाओ।

वसन्त०—महाराज! हम निर्दोष हैं, आप एकदम हमारे साथ ऐसा व्यवहार न कीजिये। जबतक पवनजी युद्धसे ना लौटें, तब तक हमें आश्रय दीजिये। उनके आने पर सब समस्या हल हो जायगी। महाराज! हम अबला आश्रय हीना कहां जाएं?

महाराज—मैं अब कुछ भी सुननेको तैयार नहीं, अतएव

तुम यहांसे शीघ्र ही चली जाओ ।

इस प्रकार वे बेचारी दीना विषण्णवदना विपत्तियोंकी मारी अपने पितृगृहसे भी ताड़ित तथा अपमानित होकर निकाली गईं ।

सायङ्कालका समय है, भगवान् भुवनभास्कर अविचल परिश्रमके पश्चात् विश्राम लेना चाहते हैं । पक्षीगण अपने घोंसलोंमें लौट रहे हैं, वह देखो, अन्धकारने चारों ओर अपना प्रभुत्व जमा लिया, अब दीना चक्रवाकीकी दशा अत्यन्त शोचनीय है ।

हमारी चरितनायिका अञ्जना अपनी प्रिय सखी वसन्तकुमारीके साथ चली जा रही है । मुखपर एक प्रकार की आभा उदासीनताकी लिए झलक रही है । सन्नाटा छाया हुआ है । इस प्रकार निस्तब्धताको भङ्ग करते हुए, वसन्त-कुमारी बोलीः—

वसन्त०—बहिन अञ्जना ! यह क्या हुआ । मुझे तुम्हारे पिताजीसे यह आशा कदापि न थी, और तो सब जाने दो, कमसे कम तुम्हारी माताको तो इतनी निष्ठुरता न करनी चाहिए थी । बहिन ! सच तो बात यह है कि भाग्यके प्रतिकूल होने पर सभी प्रतिकूलाचरण करने लगते हैं । किसी कविने ठीक ही कहा हैः—

"प्रातिकूलतामुपगते हि विधौ

विफलत्वमेति बहुसाधनता"

अस्तु–विपत्ति आ पड़ी है, अब इसके सहन करनेमें ही कल्याण है, अन्यथा नहीं।

अञ्जना–प्यारी बहिन! तुम मेरे लिये ही न इतने कष्ट झेल रही हो, मैं बड़ी नीच हूं। बहिन! तुम बड़ी विदुषी हो, मुझे समय समय पर अच्छी २ शिक्षा देती रहती हो। इन शिक्षाओंसे मुझे बड़ी सान्त्वना मिलती है। बहिन! सच तो यह है कि तुम मेरी निष्कारण बन्धु हो। मैं सच कहती हूं, न जाने तुझ बिना अब तक मैं जीती भी रहती या नहीं, मुझे तो इसमें भी सन्देह ही है।

वसन्त०–बहिन अञ्जना! तुम व्यर्थ ही मेरी इतनी श्लाघा करती हो। मैं तो किसी योग्य भी नहीं, हां, तुझ जैसी विदुषी सखीको पाकर मैं अपनेको धन्य अवश्य समझती हूं। बहिन! इस समय विपत्तियोंका सामना करने के अतिरिक्त अन्य दूसरा उपाय ही नहीं।

अञ्जना–बहिन! तुमने ठीक कहा, मैं बिपत्तियोंका आह्वान करती हूं। देवी आपदा! तुम्हारा सुस्वागत है! कर्मवीरोंकी तुम आराध्य देवी हो। विश्वके पुङ्गवोंकी तुम सहायक रही हो। भगवति! तुम धन्य हो! तुम्हारे चरणों की बलिहारी। यदि शिशिर कालमें इस विश्वमें पाला न पड़ता, ग्रीष्ममें प्रखरतर किरणोंका ताप न तपता और

वर्षामें मेघोंके जलबिन्दु रूपी तीव्र तीर न बरसते, तो अभीतक भुवनोंके भव्य भवन न बनते और हम इनके लिये ना तरसते । उदर क्षुधाकी ज्वाला-माला हमें संतप्त न करती, तो कृषि कहांसे होती ? हमारी मेधाका विकास कहांसे होता ?

वसन्त०—अञ्जना बहिन ! तुम ठीक २ समझी हो, बिना विपत्तियोंके किसीने भी अपने इष्टको प्राप्त नहीं किया संसारमें दीप्ति पहुंचानेके कार्यमें भगवान् भास्करको हिम-मेघोंने क्या २ विघ्न न पहुंचाए, परन्तु अरुणका क्या कर लिया, प्रत्युत स्वयम् ही नष्ट-भ्रष्ट हो गये । बहिन अञ्जना ! हमारी भी इस विपद्-निशाका कभी न कभी अवश्य ही अन्त होगा, हमारे जीवनाङ्गणमें अवश्य सुप्रभात होगा । बहिन ! घबरानेकी कोई ज़रूरत नहीं ।

अ०—वसन्त बहिन ! तुमने बहुत ठीक कहा है, जिसका आरम्भ है उसका अन्त भी अवश्य होगा, यह बात निस्सन्देह है । किसी कविने ठीक ही कहा है:—

सुखं हि दुःखाननुभूय शोभते ।
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ॥

अर्थात् दुःखका पूर्ण रूपसे अनुभव कर लेने पर ही सुखका अनुभव होता है, अन्यथा नहीं; जैसे घने अन्धकारमें दीप दर्शन; अर्थात् दिनमें उसकी कोई शोभा नहीं।

इसलिए आशा है कि हमारा भविष्य भी अच्छा ही होगा।

इस प्रकार वार्तालाप करती हुई, दोनों सखियां चली जा रही थीं, एकाएक भयङ्कर गर्जना सुनाई पड़ी । दोनों कई दिनकी भूखी थीं, निशा अन्धकारमय थी । मेघोंके झुंडोंने उस पर और भी अन्धकारका दृश्य भयङ्कर कर दिया । वन्य पशुओंके भयोत्पादक शब्द सुनाई पड़ते थे । तिस पर भी वे दुःखी अबलाएं कई दिनकी भूखी-प्यासी चली जा रही थी । मार्ग कण्टकाकीर्ण था और टेढ़ा-मेढ़ा भी । जबकि स्वयम् अपना हाथ भी दिखलाई नहीं पड़ता था, तब मार्गकी भली कही । भाग्य मनुष्यको नाना प्रकारके चक्रमें देता है, अपनी विचित्र २ लीलाएं दिखलाता है, किन्तु साहसी 'मनस्वी कार्यार्थी गणपति न दुःखम् न च सुखं' के अनुसार निज लक्ष्य पर पहुंचनेकी चेष्टा करता है । यही नहीं किन्तु अनेकशः बाधाओंका व्यतिक्रम करके सफलता भी प्राप्त कर लेता है । दोनों सखियां चली जा रही थीं, मार्गका कुछ भी पता न था, इतनेमें वसन्तकुमारी बोलीः—

वसन्त०—बहिन अञ्जना ! अब किसी एक स्थान पर ठहरकर आराम कर लेना ठीक होगा, क्योंकि न जाने बिना मार्ग कहां चली जाएँ ।

अञ्जना—बहिन वसन्त ! तुम्हारा कहना यद्यपि ठीक

है, तथापि यहां हिंसक जन्तुओंका इतना प्राबल्य है कि किसी एक स्थानपर ठहरना उचित नहीं जान पड़ता।

इस प्रकार दोनों सखियां चली जा रही थीं, कि अकस्मात् एक गड्डेमें गिर पड़ीं, एक तो कई दिनकी भूखी दूसरे अचानक गिर पड़ने पर कुछ चोट भी आई, इस कारण कुछ देरके लिये दोनों बेहोश हो गईं। थोड़ी देरके बाद जब अञ्जनाने चेतना लाभ की, तो उसने जाना कि उसके चारों ओर बिच्छु और अन्य विषैले जन्तुओंके फिरने का शब्द प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है।

प्रथम अञ्जनाने चेतना लाभ की। अब थोड़ी देरके बाद वसन्तकुमारी भी होशमें आई और अञ्जनाको पुकारा उत्तर पा प्रसन्न हुई, किन्तु इतनेहीमें एक भयङ्कर शब्द हुआ और कोई भारी वस्तु उस जगह गिरी। अञ्जनाने धैर्य्यके साथ कहा कि यह बहुत अच्छा हुआ है, अवश्य ही यह सिंह होगा, इसके खा लेने पर हम दुःखसे तो छूट जाएंगी, यह कह ही रही थी कि बोल उठी—"बहिन यह तो एक वृक्षकी शाखा है जो कि प्रचण्ड वायुवेग (आंधी) के कारण टूट पड़ी है। अब शनैः २ वायुने मेघोंको अपने प्रबल वेगसे छिन्न भिन्न कर दिया, चन्द्रदेव भी अब अपनी ज्योत्स्नासे निरव प्रकृतिको आह्लादित करने लगे।" दोनों सखियां शाखा का आश्रय लेकर ऊपर आईं और रास्ता

लिया ।

बनके भयावह और कठिन मार्गको समाप्त कर अब वे ऐसी जगह पहुंच गईं जो कि प्रथमसे कहीं अच्छी है। इसी भांति चलने पर उन्हें सामनेकी तरफ एक झोपड़ी दिखलाई दी ।

कष्टोंकी भी कोई सीमा होती है । जिन कष्टोंको बड़े २ धैर्य्यशाली नहीं सहन कर सकते, उनका सामना होते ही घबरा जाते हैं, उन्हींका इन दीन अबलाओंको लक्ष्य होना पड़ा है। मनुष्य किसी आशा ही को चित्तमें लेकर कठिनतर कार्य्यमें प्रवृत्त हो जाता है, पुत्रके भावी आनन्दकी मधुर आशासे माता प्रसवकालीन दुस्सह वेदनाको सहन कर लेती है। परमात्मदर्शनकी लालसासे एक तपस्वी अपने शरीरको सुखा देता है ।

अञ्जनाके चित्तमें भी अपने पतिके प्रति हार्दिक प्रेम है, यही कारण है कि वह अब तक इतनी दुस्सह यातनाओं को झेल रही है। विषय-वासनाओंकी तृप्तिके लिये ही जिस की उत्पत्ति होती है, वह नीच प्रेम है । वह निन्द्य और दूषित समझा जाता है । निर्व्याज प्रेम बाह्य उपकरणोंकी कुछ भी परवाह नहीं करता, प्रेम-पथसे प्रयाण करते समय वह आई हुई बाधाओंको कुछ भी नहीं समझता, विघ्नोंको देखकर वह मुसकरा देता है; क्योंकि इन सबको उसके

सामने हार माननी पड़ती है । प्रेमी अपनी दशाकी कदापि निन्दा नहीं करता और न अपनी मूर्खतापर आक्रोशविकोशकी बौछार किया करता है ।

अञ्जना यद्यपि आत्मीय जनोंसे विताड़ित है, तथापि अपनी दशामें मस्त है; जो भी काइे कष्ट आता है धीरता के साथ उसका सामना करती है, सहनशीलताकी पराकाष्ठा है । अब ये दोनों सखियां उस झोपड़ीके पास पहुंचीं जिसकी प्रतीक्षामें यहां तक आई थीं । कुटियामेंसे एक तपस्वी निकला, जिसे देखकर इन्होंने भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया । अपने योगबलसे वह सब कुछ जान गया और उनको अपनी पर्णशालामें ले गया, बैठाया और फल उनको खानेको दिये । कई दिनकी भूखी थीं, ईश्वरको धन्यवाद दिया और बड़े प्रेमसे उनको खाया । पुनः तपस्वीने कहा :—

तपस्वी—पुत्रियो ! मुझसे किसी भी बातके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं, मैं सब कुछ समझ गया हूं । तुम कुछ दिन यहां रहो, जबकि उपयुक्त समय आएगा मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा दे दूंगा । बेटी अञ्जना ! तू चिंता न कर, तेरे गर्भसे एक अत्यन्त प्रतिभाशाली बालक उत्पन्न होगा । तुम किसी प्रकारकी चिंता न करो । यहांपर ही अपना घर समझ कर रहो । यद्यपि यहां कन्द मूलादिके

अतिरिक्त अन्य कोई किसी प्रकारकी खाद्य सामग्री नहीं मिलती, तथापि मैं सब तरहकी तुम्हारी सुविधाके लिये चेष्टा करूंगा ।

अब वसन्त-कुमारी और अञ्जना इसी आश्रममें रहने लगीं । इस समय इनका जीवन अत्यन्त सरल रीतिसे व्यतीत होता था । दिन भर ईश्वरोपासना तथा मुनिजनों की गवेषणापूर्ण वैदिक खोज और वैदिक ज्ञानका आनन्द लूटती थीं । कई राजर्षि अपनी धर्मपत्नियों सहित वानप्रस्थ धर्म्मका पालन करते हुए अपने जीवनको अत्यन्त सारल्य युक्त व्यतीत करते थे । यहां दोनोंका जीवन बहुत ही आनन्दपूर्वक बीतता था । अञ्जनाको अपने प्राणेश्वरकी स्मृतिके अतिरिक्त अन्य कोई मानसिक कष्ट न था ।



एकादश परिच्छेद ।

पूर्व-स्मृतिः ।

विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।

(किरातार्जुनीयम् ।)



मनाथके उत्तरकी ओर एक जहाज़ लङ्गर डाले खड़ा है, डेक पर एक नवयुवक समुद्रको बड़ा उत्सुकतासे निहार रहा है । समुद्रमें अत्युच्च तरङ्गें अटखेलियां कर रही हैं । हमारे नवयुवकके हृदयमें भी समुद्र-तरङ्गोंसे बढकर तरङ्गें उठ रही हैं । युवाका चित्त अत्यन्त चञ्चल जान पड़ता है । यह और कोई नहीं, हमारे चरितनायक राजकुमार श्रीपवनजी हैं । वह देखो, मन्त्रिपुत्र सत्यव्रत भी आपके पास आगये, अब आलाप इस प्रकारसे होने लगाः—

पवन—मित्र ! आज अञ्जनाको मैंने स्वप्नमें देखा है, किन्तु अच्छी दशामें नहीं । जिस समय मैं उससे विदा होने लगा था, उस समय उसने कहा था कि प्राणनाथ ! कहीं गर्भ रह गया, तो मेरे लिए एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी । इस लिए न जाने मेरा चित्त कैसा

कुछ होरहा है । मित्र ! ऐसी दशामें क्या करना चाहिए ?

सत्यव्रत–महाराज ! आप कह रहे थे कि मैंने अञ्जना को स्वप्नमें देखा, किन्तु वह अच्छी दशामें न थी, आपने जिस दशामें देखा, यद्यपि आपको मानसिक कष्ट अवश्य होगा तथापि कह डालिए ।

पवन–मित्र ! मैंने उसे देखा कि वह अत्यन्त रुग्णा है, और मुखपर पीतताने अड्डा जमा रक्खा है । शरीरपर कोई आभूषण नहीं, प्रत्युत वस्त्र भी जीर्ण-शीर्ण पहिने हुए हैं । आर्तस्वरसे कहती है, "हृदयेश्वर ! अब तो इस दासीको दर्शन दीजिये, यह अन्तिम समय है ।"

सत्य०–मित्र ! क्या बताऊँ, स्वप्न वास्तवमें अच्छा नहीं, मेरा भी हृदय धड़कने लगा है, जबसे इस स्वप्नको सुना है, परन्तु महाराज ! कभी २ ही स्वप्न सत्य होते हैं, अन्यथा झूठे ही निकलते हैं । अतः अधिक घबराने की कोई आवश्यकता नहीं । रही बात कर्तव्यकी, सो मेरी सम्मतिमें युद्ध अब समाप्त हो ही गया, घर शीघ्र ही चलना चाहिए, देर करनेकी आवश्यकता नहीं ।

पवन–मित्र ! यद्यपि मैं भी सर्वथा स्वप्नको सत्य नहीं मानता, किन्तु मेरा चित्त यह कह रहा है कि:—

अवितृप्ततया तथापि मे,
हृदयं निर्णयमेव धावति ।

इसलिए आप सेनाको लेकर धीरे २ आ जाइये और मैं अभी एकाकी ही जाता हूं; क्योंकि हृदयकी दशा कुछ विचित्र सी हो रही है ।

सत्य०—मित्र! सेनाका आप ध्यान छोड़िये और अब शीघ्रता कीजिये, अब विलम्ब कैसा?

इस प्रकार पवनजी सत्यव्रतसे विदा हुए और रत्नपुर का रास्ता नापा। जैसी जैसी तरह घोड़ा दौड़ता-कूदता पवनसे बातें करता जाता था, वैसे वैसे हमारे पवनजीके मनमें भी विचार-रूपी घोड़े दौड़ रहे थे। बनकी शोभा और पवनजीके सैनिक वेशसे डरकर भागते हुए मृगोंका दृश्य भी विचित्रतासे खाली नहीं था, किन्तु हमारे चरित-नायकका ध्यान इस ओर कहां, वे तो एकदमसे चिन्ताओं का लक्ष्य बने हुए हैं।

मनुष्य अपने जीवनमें नाना प्रकारके कष्टोंको झेलता है, किन्तु जब प्रेमपर आ बनती है तो उस दशामें जो कष्ट होता है, उसे सहृदय ही जान सकते हैं। पवनजीके हृदय में लगी हुई है और लगे भी क्यों न; क्योंकि आपके पास अनुभवी हृदय है और उसके अनुकूल साधन भी।

कुमार पवनजी रत्नपुर पहुंचे तो सही, किन्तु अञ्जना के मिलनेकी अत्युत्कट इच्छा उन्हें बेचैन किए डालती थी। आप प्रथम अञ्जनाके भवनोंको गये; किन्तु बहांसे

निराश होकर लौटना पड़ा। अब अपनी माताजीके समीप आए, तो वहां भी अञ्जना दिखाई न दी, चित्तमें अधीरता प्रथम हीसे थी। मातासे पूछा कि—"अञ्जना कहां है!"

महारानी–पुत्र! अञ्जनाका क्या करोगे, उस चरित्र भ्रष्टाका मेरे सामने नाम न लो, उसने तो हमारे इतने बड़े उच्च कुलको कलङ्कित कर दिया। पुत्र! मेरे सामने पुनः उस कलङ्किनीका नाम न लेना।

पवन—माता! आप यह क्या कह रही हैं, अञ्जना और कलङ्क! नहीं २, माताजी यह कदापि नहीं होसकता, यदि बिना मेघोंके वृष्टि हो जाय और पाषाण-शिलापर पुष्प लग जाएं, तथा सूर्य्यमण्डल पश्चिममें उदित हो, तो भी मैं तो उस सतीके चरित्रमें सन्देह तो दूर रहा, उसकी भावनामात्र भी चित्तमें नहीं ला सकता। अञ्जना वास्तव में सती है, उसके विषयमें कोई दोषोद्भावना न करनी चाहिये।

महा०–पवन! तू तो कभी उसके पास भी नहीं गया, फिर अञ्जनाके विषयमें तेरी इतनी श्रद्धा क्यों? पुत्र! अञ्जना और उसकी सहेली वसन्त-कुमारी दोनों ही पापिनी हैं, जब तक उनका पाप छिपा रहा तब तक तो यहां रहीं, किन्तु पाप सदाके लिये नहीं छिप सकता। मैंने एक दिन

ललिताको उन्हें बुलानेके लिये भेजा था ! वे आईं, किन्तु अञ्जनाको देखते ही मेरा माथा ठनका ।

पवन०—माताजी ! आप शीघ्रता कीजिये । अञ्जना इस समय कहां है, मुझे बतलाइये । आपके माथा ठनकने के कारणको मैं नहीं समझ सका, उसे शीघ्र ही कह डालिये । मेरे चित्तमें न जाने क्यों एक प्रकारकी घबराहट सी है, आप शीघ्र ही उसे दूर कीजिए ।

महा०—पुत्र ! संक्षेपमें यह है, कि मैंने देखाकि अञ्जना गर्भवती है, अतः उन दोनोंको मैंने राज्यसे निकल जाने की आज्ञा तेरे पिताकी सम्मतिसे दे दी और वे यहांसे चली गईं ।

पवन—माताजी ! आपने बड़ी भयङ्कर भूल की । वह नितान्त निर्दोष थी । कमसे कम मेरे आते समय तक तो आपको प्रतीक्षा करनी चाहिये थी । हा ! उस निरपराध सतीको आपने व्यर्थ ही कष्ट दिया । ज्ञात होता है कि इस धूर्ता ललिताने ही सर्वनाश कराया है । हा ईश ! उस साधवीको मेरे ही कारण यह कष्ट हुआ । यद्यपि वह प्रथमसे ही इस बातकी शङ्का करती थी, किन्तु मैंने न माना । उस विचारशीला विदुषीने आने वाली विपत्तियों पर प्रथमसे ही बिचार कर लिया था ।

महारानी इन रहस्य-मय शब्दोंको सुन समझ गईं कि

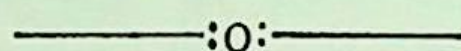
बड़ी भयंकर भूल हुई है और इसका प्रतिकार सहजमें होने वाला नहीं । महारानीने कुमारको बहुतेरा समझाया कि अञ्जनाके अनुसन्धानके लिये भृत्योंको भेजते हैं, किन्तु पवनजीने एक न सुनी । भूखा प्यासा घोड़ेपर सवार हो चल दिया और महेन्द्रपुरका रास्ता लिया ।



द्वादश परिच्छेद ।



आशांकुरका उदय ।



अन्तःकरणतत्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति कथ्यते ॥

(उत्तररामचरितम् ।]



रतवर्ष की उत्तर दिशाकी घाटीमें एक प्राचीन तपोभूमि है। यह स्थान अत्यन्त रमणाय है। चारों ओर ऊंचे २ पर्वतोंके शिखरि स्वर्ग-मार्ग-प्रदर्शक है । उनके सहारे शनैः २ चढी हुई कोमल लतिकाएं मानों स्वर्ग पहुंचनेका प्रयत्न कर रही हैं।

तरुओंने इन पर्वतोंको ऐसा सजाया है, मानो ऋतुराजकी अगवानी करनेको प्रस्तुत हुए हैं। उनकी शाखाएं सुगन्धित पुष्पोंसे लदी हुई, मानो पुष्पाञ्जलि समर्पित कर रही हैं। पहाड़ोंके मध्य प्रदेशमें पतितपावनी श्रीगङ्गाजी कलकल निनाद करती हुई प्रकृतिकी निरवता तोड़ती प्रवाहित हो रही है। गङ्गाजीका जल अभी हिमालयके उच्च शिखरसे उतरा है, ऐसा निर्मल और निर्विकार है, जैसे परमात्मासे नवीन विकसित जीवात्मा होता है। जब तक संसारकी मलिनता जीवात्माको नहीं व्यापती, वह अपने परमपिताके समान विशुद्ध होता है। अभी गङ्गाजीको सांसारिक सभ्यताका स्पर्श नहीं हुआ है, अतएव जल हिमकी भांति स्वच्छ और सुमधुर है। ज्यों २ गङ्गाजी आगे २ बढती जाती हैं, त्यों २ प्रवृत्ति-मार्गके जीवोंकी भांति जलमें मलिनता आती जाती है।

श्रीगङ्गाजीके किनारे पर महर्षियोंके आश्रम बने हुए हैं, वेदमन्त्रोंके उच्चारणसे दिशाएं प्रतिध्वनित हो रही हैं। मृग समूह आश्रमोंमें यत्र-तत्र बिहार कर रहा है। मुनि-बालक परस्पर शास्त्रचर्चा कर रहे हैं, कोई व्याकरणकी सर्वाङ्ग सुन्दरताका प्रतिपादन कर रहा है, कोई बालक न्यायशास्त्रकी प्रौढ़ युक्तियों द्वारा महर्षि व्यासदेवजी (उत्तर मीमांसाकार) की बड़े नम्र शब्दोंमें समालोचना कर रहा

है । अन्य महर्षि उनकी इस चर्चाको विनोदका साधन समझ कर सुन रहे है ।

यह स्थान जो हम ऊपर कह आये हैं, इतना मनोरम और नयनाभिराम है कि जिसकी सुप्रभाका वर्णन करना उसकी निन्दा करना नहीं तो क्या है । एक स्थान पर अञ्जना और वसन्त-कुमारी दोनों बैठी बातें कर रही हैं; समीप ही एक बालक क्रीड़ा कर रहा है । बातें इस प्रकार हो रही हैं:—

बसन्त—बहिन अञ्जना ! तुम इतनी चिन्तित क्यों रहती हो ? यद्यपि मैं इस बातको मानती हूं कि तुम्हें बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े हैं, किन्तु उदासीनता उचित नहीं। देखो न ईश्वरने तुम्हें एक खिलौना दिया है, तुम्हें यत्न-पूर्वक इसका पालन-पोषण करना चाहिये ।

अञ्जना—बहिन वसन्त ! तुम्हारा कहना ठीक है, मैं बहुत चेष्टा करती हूं, किन्तु मैं अपने हृदय से अबतक उस मानासिक कष्ट को न हटा सकी, जो कि लाञ्छना-जनित है । बहिन ! यद्यपि मैं अनेक बार इस बात की चेष्टा करती हूं कि इस प्रसङ्ग को भूल जाऊं, किन्तु भुलाए नहीं भूलता । हां, इस बात की मुझे पूर्ण आशा है कि इसमें मुझे सफलता अवश्य होगी । बहिन ! तुम मेरे लिए ही इतने कष्ट सह रही हो, बहिन ! मैंने ऐसा तुम्हें कौन

सा सुख दिया है ।

वसन्त—बहिन ! तुम मुझे बार २ ऐसा कहकर लज्जित न किया करो । तुम मेरी अभिन्न हृदया सखी हो । मैंने तुम्हारे लिए कौन ऐसा काम किया है, जो तुम मेरी व्यर्थ ही श्लाघा करती हो ? मैं तो किसी योग्य नहीं, मैं इस बात के लिए सदा चेष्टा करती हूं, कि तुम्हें सदा प्रसन्न देखूं, किन्तु तुम उदास रहती हो, ईश्वर शीघ्र ही तुम्हारी इस उदासीनता को दूर करें ।

अञ्जना—बहिन ! तुम्हारी अभिलाषाएं उच्च हैं, यही मुख्य कारण है कि तुम मेरे लिए इतने कष्ट सह रही हो। तुम्हारा हृदय परदुःखकातर है । मैं तुम्हारे कारण सत्य कह रही हूं, जीवन धारण किए हूं । तुम्हीं मेरे जीवन रक्षण में कारण हो, अन्यथा न जाने क्या कुछ होता । ईश्वर तुम्हें बनाए ।

वसन्त—बहिन ! तुम्हारा वक्तव्य निरा अतिशयोक्ति अलङ्कार का ठीक उदाहरण है । मैं तो इसमें भी अपना सौभाग्य समझती हूं कि तुझ सी विदुषी को पाकर कितना कुछ ज्ञानोपार्जन कर चुकी हूं । इस से बढकर इस संसार में और क्या लाभ हो सकता है कि इस अनित्य और मलवाही शरीर के बदले एक अविनाशी और शान्ति-प्रद पदार्थ प्राप्त हो जाए । मैं तो तुम्हारे साथ रहने से अपने

को पूर्ण रूपेण धन्य समझती हूं।

ये दोनों सखियां इस प्रकार से अपनी बातों में संलग्न थीं। समीप बालक महाबीर क्रीड़ा कर रहा है। अभी पूर्ण रूप से पैरों से चलना नहीं आता, किन्तु बातों के बीच २ में माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित अवश्य कर लेता है।

बालकों की क्रीड़ा भी कैसी मनोहारिणी और सुख प्रद है। इसका आनन्द प्रत्येक माता पिता ही जान सकते हैं, सन्तानहीन नहीं। तोतली भाषा में असपष्ट शब्दावली कितनी मधुरिमा को लिए हुए होती है। वे हृदय हारिणी चेष्टाएं मनुष्यों के हृदयाङ्गण में बिना उदित हुए नहीं रह सकतीं। जिस घर में इनका कोलाहल होता है, वह स्वर्गीय तथा अमन्दानन्दप्रद है। विशुद्ध हास्य जिसमें अभी संसार की माया का कुछ भी प्रवेश न हो पाया है, पीयूषवर्षी तथा हर्षातिशये के सरोवर में मानस-मराल को प्लावित कर देता है।

अब हम पाठकों का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। वह देखिए एक विमान आ रहा है। इस में एक स्त्री और दूसरा पुरुष है, इनके अतिरिक्त अन्य तीसरा कोई नहीं। पुरुष की आयु से प्रतीत होता है वह अधेड़ है, स्त्री की आयु का सौन्दर्य्यातिशय के कारण

कोई पता नहीं लग सकता । हम विनोदार्थ इनके आलाप को पाठकों के सम्मुख रखना चाहते हैं । यह आलाप इस प्रकार से हो रहा है:—

पुरुष—प्रिय ! देखो न महाराज प्रह्लाद विद्याधर पर कैसी विपत्ति आई है । उधर अञ्जना का कोई पता नहीं इधर कुमार पवन जी भी उसकी अन्वेषणा के लिए कहीं चलते बने । प्रिये मेरा तो विचार है कि नीचों को कभी मुंह न लगाए । सुना जाता है, इन विपत्तियों को ढाने वाली एक मूर्ख दासी है । सुना है पवनजी की माता ने इसी के कथनानुसार अञ्जना को निर्वासित किया है ।

स्त्री--प्राणनाथ ! आपने जो कहा ठीक है । मैं पूर्ण रूपेण अञ्जना को जानती हूं । वैसी सुशीला लड़की मैंने नहीं देखी । हां, आपने जो दासी के विषय में कहा सो ठीक है । देखो न, उस दिन मैं आपके साथ रत्नपुर गई थी । मैं तो उसी समय उसकी भौंडी सूरत देखकर पहिचान गई थी कि यह कोई साधारण दासी नहीं, उस की सर्पिणी की आंखों के समान चमकती आंखें कितनी भयङ्करता को लिए हुए थीं । मुझे अब भी जब कभी स्मरण हो आता है रोमाञ्च हो जाता है । पवन की माता ने इतनी विदुषी होकर यह क्या किया कि बिना गम्भीर विचार किए ही उसकी बातों पर विश्वास ले आई ।

पुरुष—प्रिये ! तुम्हारा यह कहना उचित नहीं कि वह इतनी विदुषी है, उस से क्यों ऐसी भूल हुई। मैं कहता हूं, मनुष्य और गलतियों का पुतला (कलेवर) कहना एक ही बात है, अर्थात् स्वभावतः इस से भूल होती है । हां, उनका संशोधन कर लेना आवश्यक है। हा परमात्मन् उस बेचारी निरपराधिनी की क्या दशा होगी ! बड़ी कठिन समस्या है ।

स्त्री–नाथ ! देखो न, डेढ़ वर्ष से भी अधिक समय हो गया । इतने दूत भेजे अब तक कोई पता न चला, बड़े दुःख की बात है । ऐसे दूतों को रखने से लाभ ही क्या जो व्यर्थ ही प्रजा को पीड़ित करें, अथच यदा-कदा कार्य आ पड़े तो उसे सम्पादित न कर सकें ।

पुरुष–प्राणेश्वरि ! तुम ने जो कुछ कहा सब ठीक है, किन्तु राजाओं को फिर भी दूत रखने ही पड़ते हैं, क्योंकि महाराजा लोग स्वयम् तो जाकर शत्रुप्रदेश का निरीक्षण परीक्षण कर ही नहीं सकते, यही कारण है कि उन्हें यह सब कुछ करना पड़ता है। हां, ऐसे अकर्मण्य दूतों को दण्ड अवश्य देना चाहिये जो असावधान, दीर्घसूत्री, कामी तथा लोभी हों ।

इस प्रकार आपस में बातें हो ही रहीं थीं, कि पुरुष ने कहा "देखो न प्रिये ! वे दो स्त्रियें कौन हैं जो परस्पर

बातें कर रही हैं। समीप ही एक बालक खेल रहा है ! आओ यहां पर तनिक विश्राम लेकर फिर चलें। ऋषियों की ज्ञानचर्चा सुनने का भी अतर्कित अलभ्य लाभ होगा।

स्त्री-नाथ ! आपने ठीक कहा, कुछ विश्राम अवश्य कर लेना चाहिए। ये लड़कियां ऋषियों की प्रतीत होती हैं, किन्तु महाराज ! यह क्या, ये दोनों काले* वस्त्र क्यों पहिने हैं ?

पुरुष-प्रिये ! संसार में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं, जिसे कोई न कोई दुःख न हो। किसी असह्य शोक के कारण ही इन्होंने ऐसा किया होगा। चलो चलकर पता तो लगाएं; कि इन के दुःख का क्या प्रधान कारण है और हम क्या इनकी सहायता कर सकते हैं। कदाचित् हम से इनकी सहायता बन पड़े, मैं यदि ऐसा कर सका तो अपने को धन्य समझूंगा।

स्त्री-नाथ ! आपने ठीक कहा, दुखित की सहायता अवश्य करनी चाहिए। क्षत्रियों का यही मुख्य कर्तव्य भी है जो अपने इस प्रधान कर्तव्य का पालन नहीं करता वह क्षत्री नहीं।

पुरुष-प्रिये ! यह तुमने अच्छी और शास्त्रानुमोदित

---

* उस समय में काले वस्त्र धारण करना शोकका चिन्ह समझा जाता था।

बात कही और मुझे निज कर्तव्यका स्मरण भी दिला दिया। ऐसा करके तुमने आर्य्यललनाओंके कर्तव्यका पूर्णरूपेण पालन किया है। हमें इनके पास जाकर इनकी दशाका अनुसन्धान जरूर करना चाहिये, शायद हम इन की कोई सेवा कर सकें, क्योंकि 'क्षत्री' शब्दका अर्थ है, दुःखसे रक्षा करना। यदि कोई क्षत्री ऐसा नहीं करता तो वह कदापि क्षत्री कहलानेका दम नहीं भर सकता। वह दम्भी है और आत्म-वञ्चक भी। इसलिए शीघ्रता करो।

स्त्री—हां महाराज! चलिये, जहांतक हो सके इनकी सेवा करनी चाहिये। देखो न महाराज! बालक जो इनके पास ही खेल रहा है; कैसा सुन्दर प्रतीत होता है! इसके सुनहले केश और दीर्घ ललाट तथा मनोरम दशनपंक्ति स्पष्ट बता रही है कि यह किसी महाराजाका वंशधर है। बिना गन्धमृग कस्तूरी और बिना मानसरोवरके हंस तथा विना सज्जनके साधु-कर्म होना जैसा कठिन है, वैसे ही अन्य कुलमें ऐसे बर्चस्वी तथा प्रतिभाशाली बालकका होना भी असम्भव है।

इस प्रकार यह दोनों स्त्री पुरुष बातें करते हुए यहां पहुंचे। इनका विमान वहां उतरा। उसके उतरनेके शब्द से दोनों सखियां चकित हो गईं और उसी ओर निहारने लगीं। पुरुषके समीप जानेपर आंखें चार हुईं। ऐसा होने

पर ऋषि पुत्री उस अपरिचित पुरुषके साथ चिमट गई और पुरुषकी भी अविरल अश्रुधारा बह निकली। यह करुणामय दशा थोड़ीसी देर बाद समाप्त हुई। एक दूसरे से पृथक् हुए।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि यह कौन अजनबी है, जिसका इस प्रकारसे सम्मिलन कराया। हम पाठकोंके आश्चर्यको दूर किये देते हैं। यह पुरुष और कोई नहीं, यह अञ्जना देवीका मामा तथा हनुमानपुरका राजा प्रतिसूर्या (प्रीति सूर्य ?) है। जो इनसे विमानमें बैठी हुई स्त्री बातें कर रही थी, वह आपकी अर्द्धाङ्गिनी श्री महारानी रवि-सुन्दरी है ये सखियां वसन्त और अञ्जना हैं, तथा बालक महाबीर।

इस प्रकारके आकस्मिक सम्मिलनसे जो आनन्द अञ्जना और प्रतिसूर्याको हुआ वह वर्णनातीत है और सहृदय हृदय संवेद्य भी। अञ्जनाके नेत्रोंसे अश्रुधाराका प्रवाह अविरल रूपसे बह रहा था, यह स्वाभाविक नियम है कि विपन्न मनुष्यकी जब किसी आत्मीयसे भेंट होती है, तो अनेक चेष्टाएं करनेपर भी वह अपने हृदयस्थित दुःखोत्पन्न अश्रुओंको नहीं रोक सकता। अब दुःखका आवेग जब कुछ कम हुआ, तो इस प्रकारसे बातें होने लगीं:—

प्रतिसूर्या—पुत्री ! हम इस समय तेरे सम्बन्धमें ही बातें कर रहे थे, पुत्रि ! तूने बड़ा कष्ट उठाया, किन्तु मैं आशा करता हूं कि इतना सब कुछ होने पर भी पवनके प्रति तुम्हारे चित्तमें तनिक भी विरक्तता न आई होगी। पुत्रि ! अपने चित्तमें पवनके प्रति उदासीनताको ज़रा भी स्थान न देना।

रविसुन्दरी–हां, पुत्रि ! जैसे तेरे मामाने कहा है, उसी लक्ष्य पर रहना प्रत्येक आर्य्य-बालाका कर्तव्य है, आर्य्य-ललनाका प्रेम कोई ऐसा वैसा नहीं होता। विपत्तिके आ-वरणसे वह ढका नहीं जाता। देखो न शारदी ज्योत्स्ना क्या कभी काले वस्त्रके आच्छादनसे ढकी जा सकती है? कदापि नहीं। इस प्रकार सदा सम रहने वाला ही विशुद्ध प्रेम है। हां, पुत्री अञ्जना ! यह दूसरी कौन है?

अञ्जना–मामीजी ! यह मेरी बाल्यकालकी प्रिय सखी वसन्त-कुमारी है, अभी इसका विवाह नहीं हुआ। यह मेरे साथ सदा ही छायाकी भांति रहती है। इससे मेरा बड़ा हित-साधन हुआ है। यह बड़ी विचारशीला और विदुषी है।

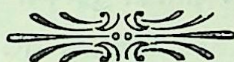
प्रतिसूर्या–पुत्री वसन्त-कुमारी ! मैं तुमसे बड़ा सन्तुष्ट हुआ। इस प्रकार अपनी विपद्-ग्रस्त सखीका साथ देकर तुमने अपने कर्तव्यका पूर्णरूपेण पालन किया है।

यह बातें हो हीं रही थीं कि इतनेमें हमारे महावीर-

जीने लपककर प्रतिसूर्याका चरण पकड़ लिया और धोती भी। प्रतिसूर्याने कहा कि यह बालक किसका है? मुझे बड़ा प्रिय लगता है। इस पर अञ्जना कुछेक लज्जित हुई, तब वसन्त-कुमारी बोली।

वसन्त०—महाराज! यह बालक अञ्जनाका है और इसीके कारण अञ्जनाको इतना कष्ट उठाना पड़ा।

ये बातें हो रही थीं, कि इतनेमें ऋषि महाराज भी आ गये। इन्होंने राजाका अतिथिसत्कार किया और राजाने ऋषिसे विदा मांगी, और अञ्जना और बसन्त तथा महाबीरको ले अपने नगरको प्रस्थान किया।



त्रयोदश परिच्छेद ।

अञ्जनाकी खोज ।

मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्योऽभिनवरसास्वादलम्पटः
कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति ।

(प्रियदर्शिका ।)



तः कालका सुहावना समय है, पक्षियोंका कलरव बहुत ही भला बोध होता है। वनका दृश्य नयनाभिराम और मनमोहक तथा शान्ति-प्रद प्रतीत होता है । इस दृश्यको देख कौन ऐसा है; जिसके चित्त में सुखदायिनी शान्तिका सञ्चार न हो ? हां, एक मनुष्य है, वे हैं हमारे चरितनायक श्री पवनजी। आप अत्यन्त रमणीक स्थानसे होकर गुज़र रहे हैं, इस बातका आपको तनिक भी ध्यान नहीं ।

आप अपने ध्यानमें मस्त चले जा रहे हैं, चिन्ताओं का जमघट आपको घेरे हुए है, रह २ कर अञ्जनाकी

स्मृति आपको व्याकुल किये देती है। आप प्रेमतत्वज्ञ हैं, इसीलिए आज आपकी ऐसी दशाका होना कोई विलक्षण बात नहीं, किन्तु स्वरूपानुरूप दशा है। यदि आज आप की ऐसी दशा न होती, तो सहृदयताको लज्जासे मुंह ढांपना पड़ता, एतदर्थ आज हम आपको ऐसी दशामें देख रहे हैं। आपको इस दशामें देख समस्त रूपसे प्रकृति आपका साथ दे रही है, समस्त उपकरणोंके साथ आपके दुःखमें सहानुभूति प्रकट कर रही है। आप-दुर्गम पर्वत-मालामें होकर जा रहे हैं, घोड़ेकी टापोंकी प्रतिध्वनि गूंज रही है, मानों पर्वत भी आपसे सहानुभूति प्रकट करनेके लिये करुण-क्रन्दन कर रहे हैं। वृक्ष-राजी अपने पत्तोंसे ठंडी २ श्वांस ले रही है। मछलियां जलमें तड़फ रही हैं। पार्वतीय नदी अपनी कल्लोलें करना भूल गई, निस्तब्धता का साम्राज्य है। आप अपने ध्यानमें मस्त चले जा रहे थे, कि अचानक आपका ध्यान भङ्ग हुआ; तो क्या देखते हैं कि सामने एक तपस्वी खड़े हैं, इनकी जटाएं पीतताको लिये हुए हैं और मुखपर एक विचित्र प्रकारका तेज झलक रहा है। पवनजीने घोड़ेसे उतरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया, मुनिने आशीर्वाद दिया और इस प्रकार उपदेश देने लगेः—

पुत्र पवन! मैं जानता हूं कि इस समय तुम्हें मानसिक कष्ट है, परन्तु मुझे तुझ सरीखे बुद्धिमान्से यह आशा

कदापि नहीं कि एक कायर और साधारण कामासक्त मनुष्यकी भांति अपने वीरोचित साहसको खो बैठो। ऐसा करना क्षत्रियत्वके नितान्त विरुद्ध है। तात्पर्य्य यह है कि कभी विपत्तिमें उदास न होना चाहिये। सदा आनन्दित रहो। उदास होनेसे मनुष्य मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। बुद्धिका उपयोग भी तभी तक ही ठीक २ हो सकता है, जबतक चित्त मानसिक कष्टसे बचा हुआ है। दुखी रहनेवाले लोगोंकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, वे ईश्वर-दत्त इस रत्नको काममें नहीं लासकते। सदा साम्य-भावसे रहते हुए ही प्रकृतिका सच्चा सुख मिलता है, अन्यथा नहीं।

पुत्र! जीवन शोक करनेके लिये नहीं है, किन्तु काम करनेके लिए है, अपने मार्गमें आई हुई रुकावटोंको देख घबरा न जाय। ऐसी क्षुद्रातिक्षद्र विपत्तियां जीवनको उन्नत करनेमें सहायक होती हैं, बाधक नहीं। पुत्र! कई निर्बल मस्तिष्क वाले नवयुवक विपत्तियों से घबराकर आत्महत्या करनेकी सोचते हैं, क्या यह कायरता नहीं? छिः छिः! कैसी कमज़ोरी है!!

पुत्र पवन! स्मरण रखो, रुकावटें और कठिनाइयां आपकी हितचिन्तक हैं, वे आपकी शक्तियोंका ठीक ठीक उपयोग सिखानेके लिए हैं; वे मार्गके कण्टक हटानेके

लिए हैं । वे तुम्हारा जीवन आनन्दमय बनानेके लिए हैं। पुत्र ! जिनके जीवन-पथमें रुकावटें नहीं पड़ीं वे जीवनका आनन्द ही नहीं जानते । जीवनका रस उन्होंने ही चखा है, जिनके कर्म-क्षेत्रमें बड़ी २ कठिनाइयां पड़ी हैं । उन्हींका जीवन 'जीवन' कहला सकता है ।

पुत्र ! यह संसार आनन्दसे परिपूर्ण है । उस आनन्द से वही आत्माएं लाभ उठा सकती हैं जिन्होंने जीवनोद्देश्य को समझ उसकी सिद्धिपर कमर बांधी है । भीरुकायर मनुष्य अपना शत्रु आप ही है । वह कठिनाइयोंसे भागना चाहता है, किन्तु भाग नहीं सकता । रोता है, चिल्लाता है, किन्तु इससे उसका दुःख और भी बढ़ता है । उसका जीवन कण्टकमय हो जाता है, वह जहां जाता है अपने दुःखकी गठरी साथ ले जाता है ।

इसलिये दुःख और कठिनाइयोंका वीरता और धीरता-पूर्वक सामना करो । इनसे कदापि न डरो । ईश्वर पर सच्चा विश्वास रख अपने कर्तव्य-पथपर डटे रहो । पुत्र ! अञ्जनाके लिये इतना घबरा जानेकी कोई आवश्यकता नहीं, वह अवश्य सकुशल मिल जायगी । इतना कह योगि-राज तिरोहित हुए । पवनने अपने आपको अकेला पाया ।

पवन अपने मनमें कहने लगा, "एं ! ये महात्मा कौन थे, इन्हें अकस्मात् अञ्जनाकी बातका कैसे पता लगा

अथवा योगियोंके लिये कुछ असम्भव नहीं ।" हमारे चरितनायकने अब यहां अधिक ठहरना उचित न समझा, घोड़ेपर चढकर चल दिये। यहां पर हमने इतना अवश्य देखा कि उस महानुभावके उपदेशामृतसे हमारे चरितनायकमें अब एक प्रकारका उत्साह पैदा हो गया था; चेहरा अब म्रियमाण नहीं, जैसाकि कुछ क्षण पूर्व था, अब वह खिल उठा है। ये अश्वारूढ़ हो, अपने चित्तमें एक प्रकारकी उमंग ले चल दिये।

पवनजी अपने मनमें प्रसन्न हो अञ्जनाके मिलनेकी लालसासे महीन्द्रपुरकी ओर चले जा रहे हैं। मार्गकी थकावटके कारण आपका चेहरा यद्यपि कुछ कुम्हलासा गया है, तथापि प्रियाकी मिलन-लालसा आपकी खिन्नता को दूर किये हुए है। अब आप महीन्द्रपुर पहुंच गये। राज-भवनोंके समीप पहुंचने पर आपको एक प्रकारकी उदासीनताकी झलक दिखलाई दी। राज-भवनमें प्रथम जैसी चहल-पहल नहीं है, सन्नाटा छाया हुआ है। द्वार पर पहुंचते ही एक दासीसे साक्षात्कार हुआ, घोड़ेको वहांपर ही खड़ा कर पवनजी आगे बढ़े, और दासीको अपना परिचय देकर महारानी (अञ्जनाकी माता) से मिलने की इच्छा प्रकट की। दासीने अन्दर जाकर कहा, "महारानीजी! एक नवयुवक आया है; अपनेको रत्नपुराधीश्वर

का पुत्र बताता है, आपसे शीघ्र ही मिलना चाहता है।" महारानीको मर्मान्तिक व्यथा हुई। फिर दासीको कहा—"अस्तु, उन्हें आदर-पूर्वक यहां लिवा लाओ।" दासी आज्ञा पाकर बाहर आई, और राजकुमारको सादर अन्दर ले गई। राजकुमारने महारानीको प्रणाम किया। महारानी ने पवनको छातीसे लगा लिया। पवनजीसे रहा न गया, वे बच्चेकी भांति रोने लगे, वे अपने दुःखको अश्रु-विमोचन से कुछ शान्त कर चुप हो रहे। इस आशासे कि महारानी अञ्जनाके विषय में कुछ कहती है कि नहीं, महारानीके मुंह की ओर बड़ी दीनतापूर्वक ताकते रहे। उस करुणाजनक अवस्थाका वर्णन करना कल्पनातीत है जो कि उस समय राजकुमारकी थी। इस प्रकारकी दुस्सह निस्तब्धताको भङ्ग करते हुए महारानीने कहाः—

महा०—पुत्र! आज मैं बड़ी लज्जित हूं। अञ्जनासे मुझे यह आशा कदापि न थी। मैं क्या करूं, मेरे खोटे भाग्य! हाय!! अञ्जना होते ही क्यों न मर गई!!! इस प्रकारकी मुझे लाञ्छना तो सहन न करनी पड़ती। पुत्र! इसी लिये कन्योत्पत्तिसे मनुष्य प्रसन्न नहीं होते, इस बात को मैंने आज जाना। हा! परमात्मन्! गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंका पालन करना कितना कठिन है!

पवन—माताजी! यह आपने क्या कहा! अञ्जना के

प्रति यह दुर्भावना कैसी !! अञ्जना जैसी सतीके प्रति आप के ये भाव !!! मेरी तो समझमें नहीं आता कि आप क्यों उस सतीको इस प्रकार कलङ्कित कर रही हैं । मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अञ्जना जैसी आप समझ रही हैं, वैसी नहीं। आपका किसी प्रकारका उस सती पर दोषारोपण करना सरासर अन्याय है, वह नितान्त निर्दोष है।

महा०—ऐं पुत्र ! यह तुम क्या कह रहे हो । अञ्जना पूर्ण रूपसे निर्दोष है, यह कब सम्भव हो सकता है ? तुम्हारे पिताजीने तुम्हारे श्वसुरके नाम एक पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने इस बातका उल्लेख किया था कि अञ्जनाको जो गर्भ हुआ है, वह पवनका कदापि नहीं, क्योंकि वह तो अञ्जना से न जाने क्यों घृणासी करता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह कलङ्किनी है । हमने उस पत्र पर विश्वास किया, और अञ्जनाको अपने यहां न रख उसी समय निकाल दिया, यद्यपि उसने अनेकशः अनुनय-विनय की, किन्तु तुम्हारे श्वसुर कब मानने लगे थे ।

प०—हा जगदीश ! उस निर्दोषको मेरे कारण कितने कष्ट सहने पड़े । मैं पुनरपि दावेके साथ कहता हूं कि वह नितान्त निर्दोष है, न जाने आप लोगोंने क्यों उसके साथ इतना कठोर व्यवहार किया । वह सच्चरित्रता और प्रेमकी प्रतिमा है, मैं उसके प्रति किसी प्रकारकी भी दुर्भावना

नहीं ला सकता।

इस प्रकार महारानी और पवनजीमें कुछ देर तक वार्तालाप होता रहा। महारानी स्वयम् उद्विग्नसी थी, फिर पवनजीको सान्त्वना क्या देती! महारानीकी अवस्था आज विचित्रसी बोध होती थी। महारानी आज अपने आपको बड़ा धिक्कार रही थी, वह मानों बड़ा भारी अपराध कर चुकी है। उसे रह रह कर अपने ऊपर क्रोध आता था, वह अपने मनमें कहती थी, कि पवनके आने तक हमने उसे क्यों न ठहराए रक्खा। वह इस प्रकार अपने ध्यानमें मग्न थी कि इतनेमें महाराज भी आ गये। पवनजीने उठकर प्रणाम किया। महाराजने आशीर्वाद दिया—महारानी बोली।

महारानी–महाराज! देखिये न। हम लोगोंने कैसी भद्दी भूल की, निरपराध अञ्जनाको घरमें न रहने दिया। पबन कहते हैं कि वह नितान्त निर्दोष थी।

महाराज–ओफ! हमने तब तो बड़ा भारी अनर्थ किया। अस्तु, अब क्या किया जाय, जो होना था सो होगया, अब अञ्जनाके अनुसन्धानार्थ मैं अपने गुप्तचरोंको भेजता हूं। पुत्र! तुम अस्वस्थ प्रतीत होते हो, जाओ आराम करो, तुम्हें भी व्यर्थ कष्ट हुआ, जो होना होता है वह होकर ही रहता है।

पवन—महाराज ! आप जैसे विद्वानोंके मुखसे ऐसी उक्ति शोभा नहीं देती । जो कुछ भूल हमने की उसे ही भाग्यके मत्थे मढ़ दिया, यह अन्याय नहीं तो क्या है ? मनुष्य अपने भाग्यका विधाता स्वयम् है । देखिये, एक स्थानपर क्रूर राजाके द्वारा अनकशः मनुष्योंका वध होता है, किन्तु दूसरे दयालु राजाके हाथों वहां पर सुन्दर २ चिकित्सालय और अतिथिशालाएं बनाई जाती हैं, दोनों अपने २ भाग्यके स्वयम् विधाता हैं । मैं भाग्य और पुरुषार्थ को मानव-जीवन-सञ्चालनके दो चक्र मानता हूं ।

आपने मुझे आराम करनेके लिए कहा है, किन्तु मैं इसे घोर पाप समझता हूं । वह निर्दोष मारी २ फिरे और मैं आराम करूं । मेरे पापका प्रायश्चित्त यही है कि मैं उसे अविकल परिश्रमसे खोज निकालूं ।

महाराजने पवनजीको यद्यपि बहुतेरा समझाया, किन्तु उसने एक न मानी, वह जितना अञ्जनाके अन्वेषणमें विलम्ब होता था, पाप समझता था । यद्यपि सायंकाल का समय था, तथापि राजकुमार पवन दो दिनका भूखा महीन्द्रपुरसे चल दिया ।



चतुर्दश परिच्छेद ।

उपसंहार ।

दम्पति-मिलन ।

न वशीवद्या नाकलक्ष्म्या, न च वित्तेन तथा सुधारसेन।
प्रमदं भजते मनः स्वयं, परिपूर्णेन यथा मनोरथेन ॥

(मल्लिका मारुतम् ।)



मयकी गति बड़ी ही विचित्र है, कुछ जान नहीं पड़ता; क्षणमें कुछ और क्षण में कुछ । कहां दांतोंके कटकटाने शब्द करने वाली शिशिर रजनी और कहां बासन्तिक ठाट-बाट-समलङ्कृत नूतन वर्ष ! कहां सन्ध्याकालीन सुरुचिरता और कहां ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नका आग उगलने वाला बवंडर सूर्य्य । कालचक्र प्रतिक्षण अद्भुत पलटा खाता है सांसारिक सभी कार्य परिवर्तित होते रहते हैं, यही कारण है कि आज हमारी चरितनायिका और नायकका सम्मिलन हो रहा है, इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं । दुःखके अन्तमें सुख अवश्य होता है, यह व्यापक नियम सर्वत्र काम कर रहा है ।

आज अञ्जनाको अपने मामाके घर आये कई दिन बीत गये, प्रत्येक बातकी सुविधा रहते हुए भी उसे अपने पतिदेवका स्मरण रह रहकर हो आता था, वह सदा एक उच्च कोटिके भक्तकी भांति अपने पतिके ध्यानमें मग्न रहती थी। वह सोचती थी कि पतिदेव युद्धसे अवश्य लौट आये होंगे। उन्हें मेरी निर्दोषितापर पूर्ण विश्वास होगा। कहीं आवेगमें अपने माता-पिताको कोई कुवाक्य न कह डालें। नहीं २ वे बड़े गम्भीर हैं, उनसे ऐसी तरलता होनी कदापि सम्भव नहीं। यह सब बातें प्रति क्षण अञ्जनाके चित्तमें चक्कर लगा रही थीं कि इतनेमें वसन्तकुमारी बालक महावीरको लिए हुए आ पहुंची। अब इस प्रकार बातचीत होने लगी—

वसन्त—बहिन अञ्जना! मैंने मामाजीसे कहा है, अब क्या किया जाए? उन्होंने कहा है कि रत्नपुरसे दूत तुम्हारे अन्वेषणार्थ आये हैं। वे कहते हैं कि जिस समय कुमार युद्धसे लौटे और तुम्हारा वृत्तांत सुना, तो वे बड़े दुखी हुए और उन्होंने कह दिया कि वह निर्दोष है। पिताजीके बहुत निषेध करने पर भी वे तुम्हें ढूंढनेके लिये चल दिये। इसपर मामाजी कहते हैं कि अब तुम्हें रत्नपुर पहुंचा आना ही ठीक होगा। ज्ञात तो ऐसा होता है कि अब तुम्हारी इस विरह-निशाका अन्त होगा और आनन्द सूर्य्यका उदय।

अञ्जना—बहिन वसन्त! मैं बड़ी ही पापिनी हूं कि

मेरे ही कारण पतिदेवको इतने कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं, न जाने वे कहां मारे-मारे फिरते होंगे। मैं तो समझती हूं वे सबसे पहिले महीन्द्रपुर गये होंगे। वहां पर किसी प्रकारका भी पता चलना असम्भव है। एक बात अवश्य ही मुझे आनन्दित कर रही है, वह यह कि उन्होंने मेरे माता-पितासे ज़रूर मेरी निरपराधिताके विषयमें कहा होगा।

वसन्त—हां बहिन ! यह तो अवश्य ही कहा होगा। फिर न जाने अपने घर लौटे होंगे अथवा जंगल २ मिट्टी छानते हुए फिरते होंगे। एक तनिकसी भूलसे उन्हें कितना कष्ट हुआ। तुम्हारी सास उस समय इतनी जल्दबाजी न करती तो क्यों व्यर्थ हमें और उन्हें इतने कष्ट होते। अस्तु, ईश्वर कुमारको चिरायु करे, मुझे तो इसी बातकी बड़ी खुशी है कि कुमारको हम लोगोंका बड़ा ख्याल है।

ये बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें महाराज प्रतिसूर्य्या भी आ गये, और सबने रत्नपुरकी ओर प्रस्थान किया। शीघ्रगामी वायुयानसे थोड़े ही समयमें रत्नपुर पहुंच गये।

अञ्जनाकी सासने लज्जित हो अञ्जनाका अच्छा सत्कार किया और बालकको गोदमें लेकर उसका मुंह चूमा। इतनेमें खबर मिली कि कुमार ढूंढते २ महाराज प्रतिसूर्य्या के यहां पहुंचे और उन्हें वहां इस बातका पता लगा कि महाराज प्रतिसूर्य्या अञ्जनाको लेकर रत्नपुर गये हैं, इस

लिये वे यहां लौट आये हैं । इस समाचारको सुन सभी प्रसन्न हुए । कुछ ही देरके बाद कुमार भी अन्दर आ गये और बालक उछलकर पवनजीकी गोदमें आ गया ।

यह सब कुछ होही रहा था कि इतनेमें समाचार मिला कि महाराज महेन्द्रराय भी इस शुभ समाचारको सुनकर यहां आये हैं इस आकस्मिक सम्मिलन से सभी प्रसन्न हुए । अन्तमें इतना कह देना और शेष है कि अञ्जनाने अपनी वदान्यताके कारण पवनके वहुत निषेध पर भी ललिता नामक दुष्ट दासीको क्षमा कर दिया और वसन्त-कुमारीका विवाह बड़ी धूमधामसे पवनके चचेरे भाई वल्लभ देवके साथ सम्पन्न हुआ ।

प्रेमी पाठक-पाठिकाएं इन नवदम्पतियोंके आनन्दका स्वयम् अनुमान कर लें जो उनको उस समय हुआ होगा, क्योंकि यह आनन्द ब्रह्मानन्द सहोदर है और वर्णनातीत भी ।

ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह सदा भारतीय दम्पतियोंके हृदयोंको हमारे चरितनायक और नायिकाकी भांति प्रेम-सुधा-तरङ्गिणीके सहृदय संवेद्य निनादसे पूर्ण करे, अथवा सर्वदा मनुष्योंको निज २ कर्तव्य-पालनका पूर्ण बल दे, जिससे कि कर्तव्यच्युत हो सुखसे वञ्चित न रहें ।

* शुभमस्तु *

नारी धर्म ग्रन्थमाला ।

यह सीरीज़ स्त्री-शिक्षा के लिये जारी किया गया है। जिस में प्राचीन स्त्रियों के मनोहर व शिक्षा-प्रद जीवन वृत्तान्त और इसी प्रकार स्त्री-धर्म्म उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं। निम्न लिखित पुस्तकें इस ग्रन्थमाला में इस समय तक निकल चुकी हैं:—

द्रौपदी सत्यभामा सम्वाद—पतिव्रत धर्म्म पर एक उत्तम उपदेश जिस में बतलाया गया है कि किस प्रकार एक आज्ञाकारिणी स्त्री अपने गृह-धर्म्म को भली भान्ति जानती हुई और उस पर अमल करती हुई अपने पति को अपने वश में कर सकती है। मूल्य ≡)

पतिव्रता दमयन्ती—महारानी दमयन्ती के प्रभावशाली जीवन का सूक्ष्म दृश्य महाभारत के आधार पर दिया गया है। मूल्य ।)

गृहधर्म—(पण्डित शिवनाथ शास्त्री जी रचित बंग-भाषा के पुस्तक का अनुवाद) इसमें पन्द्रह अध्याय हैं, जिन की विषय सूची यह है:—परिवार, गृहधर्म्म में स्त्री का अधिकार, विवाह, गृह देवता, पति और पत्नि का सम्बन्ध, सन्तान पालन, भ्राता और भगिनी का सम्बन्ध, गृह पालित पशु पक्षी के लिये मनुष्य का कर्तव्य, अतिथि, अभ्यागत के विषय में, मनुष्य धर्म्म, पड़ोसी के प्रति कर्तव्य, मित्र और मित्रता स्वदेश के लिये कर्तव्य, पारिवारिक उपासना। मूल्य ॥)

पति पत्नी प्रेम—बड़ा ही रोचक और सच्चा उपन्यास स्त्री तथा पुरुष दोनों के पढ़ने योग्य, स्त्री का पतिव्रत धर्म्म और पुरुष का नारी व्रत, दोनों का सच्चा चित्र दिखाया गया है। वीरता, जासूसी और आत्म-त्याग का एक मात्र नमूना, सच्ची शिक्षा देने वाला आचार व्यवहार का आदर्श। मू० ॥)

सती सावित्री—सती सावित्री के समान भारतवर्ष को छोड़कर संसार के समस्त साहित्य में दूसरी धर्म-परायणा विदुषी मिलना कठिन है। सावित्री ने अपने जीवन से यह भली भांति दर्शाया है कि किस प्रकार एक कन्या धर्म के आगे अपने सारे सुखों को त्याग सकती है, किस प्रकार वह पिता की आज्ञा से स्वयं ही जीवन का साथी ढूंढ सकती है, फिर वह किस प्रकार अपने विचारों पर दृढ़ रहती है। यहां नहीं सबसे बढ़कर सावित्री का जीवन इस लिये आदर्श है कि वह हमारे सामने "किस प्रकार एक कन्या अपने अतुल पुण्य से दोनों (बाप और श्वसुर) कुलों का कल्याण कर सकती है" इस बात का जीवित जागृत उदाहरण रखती है। मूल्य ।=)

प्राचीन हिन्दू माताएं—इस पुस्तक में हिन्दुओं की सच्चरित्रता, उत्साह, भक्ति, धर्म-परायणता और वीरता की दस आख्यायिकाएं हैं। इन्हें पढ कर आप प्राचीन भारत के गौरव का अनुमान कर सकते हैं। हमारी बहिनों को ऐसे आदर्श चरित्र पढ़ कर इन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मनोरंजन की भी काफी सामग्री है। मूल्य १)

मिलने का पता:—

...यण दत्त सहगल एण्ड सन्स,

लाहौरी दरवाज़ा, लाहौर।

